॥ श्रीः ॥

# श्रीसाधुबेला तीर्थ

अर्थात्

## श्रीगुरू बनखण्डी उदासीन जी के स्थान का

# संक्षिप्त इतिहास



दाम ॥)

लेखक :—

कार्ष्णि नारायणदास
M. A

श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेवाय नमः

# श्री साधुबेलातीर्थ

अर्थात्

( सद्गुरु बनखण्डी आश्रम )

का

## संक्षिप्त इतिहास

प्रकाशक

पूज्यपाद श्री १००८ मान्य योगीराज सद्गुरु स्वामी बनखण्डी सिंहासनासीन परमहंस परिब्राजकाचार्य्य हिंदूधर्म रक्षक श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी उदासीन महन्त श्री साधुबेला तीर्थ सक्खर ( सिन्धु )

---


लेखकः—

**प्रो० कार्ष्णि नारायणदास जी**

एम० ए० एम० ओ० एल०


---


प्रति १००० ] तृतीयवार [ दाम ।||)

वैशाखी (मेष संक्रान्ति) दिन रविवार वि० सं० २००४ } १३ अप्रैल १९४७ ई०

Printed by
R. B. Malaviya
at the
Abhyudaya Press,
Allahabad.



Published by
His Holiness Shri Swami
Harinamdasji Mahant
Shri Sadhubela Tirath,
Sukkur (Sind).

# इस स्थान का नाम श्री साधुबेलातीर्थ पड़ने का कारण

(१) श्री साधुबेलातीर्थ नाम इसकर पड़ा कि जिस जगह (दोनों टेकरियों की एक मिली जगह) में पूज्य श्री स्वामी बनखण्डी साहब जी ने (श्री का अर्थ है कि शोभनीक तीर्थ का अर्थ है कि स्वामी जी के पवित्र चरण पधारने से इस जमीन का पवित्र) होना (और साधु का अर्थ है कि स्वयं महात्मा थे) खब्बरों की झाड़ी का बेला (बेला का अर्थ जंगल का बेला) देख यहाँ निवास किया इसलिये इस स्थान का नाम श्री साधुबेला तीर्थ पड़ा।

(२) पूज्य श्री स्वामी जी का नाम बाबा बनखण्डी साहब था। बन का अर्थ है बेला और खण्ड का अर्थ है कि दो टेकरियों का खण्ड यानी जमीन का टुकड़ा जो सिन्धु गंगा के मध्य में है। जिस पर खब्बरों की झाड़ियों का जंगल था। तथा श्री स्वामी जी साहब स्वयं साधु थे इसकर इसका नाम साधु और बेले को मिलाकर यानी जोड़कर इसका नाम श्री साधुबेला तीर्थ रक्खा गया।

(३) कोई-कोई प्रेमी पुरुष साधुबेला धाम भी कहते हैं सो धाम का अर्थ है कि (पूज्य स्वामी बनखण्डी साहब जी के अपनी हस्त से बनाई हुई जगह में रहने से) इसकर कोई-कोई प्रेमी पुरुष श्री साधुबेला धाम भी कहते हैं।

(४) कोई-कोई प्रेमी पुरुष गुरु बनखण्डी मन्दिर भी कहते हैं। धाम तथा मन्दिर का अर्थ है कि सद्गुरु बनखण्डी साहब के रहने की जगह इसकर कोई-कोई प्रेमी पुरुष श्री गुरु बनखण्डी मन्दिर भी कहते हैं।

(५) श्री साधुबेलातीर्थ को सद्गुरु बनखण्डी साहब का आश्रम भी कहते हैं। इसका मतलब यह है कि सद्गुरु बनखण्डी साहब उदासीन जी ने इस जगह को स्वयं बसाय और रहने से सद्गुरु बनखण्डी आश्रम कहते हैं। मशहूर नाम तो गुरु बन-खण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ नाम है।
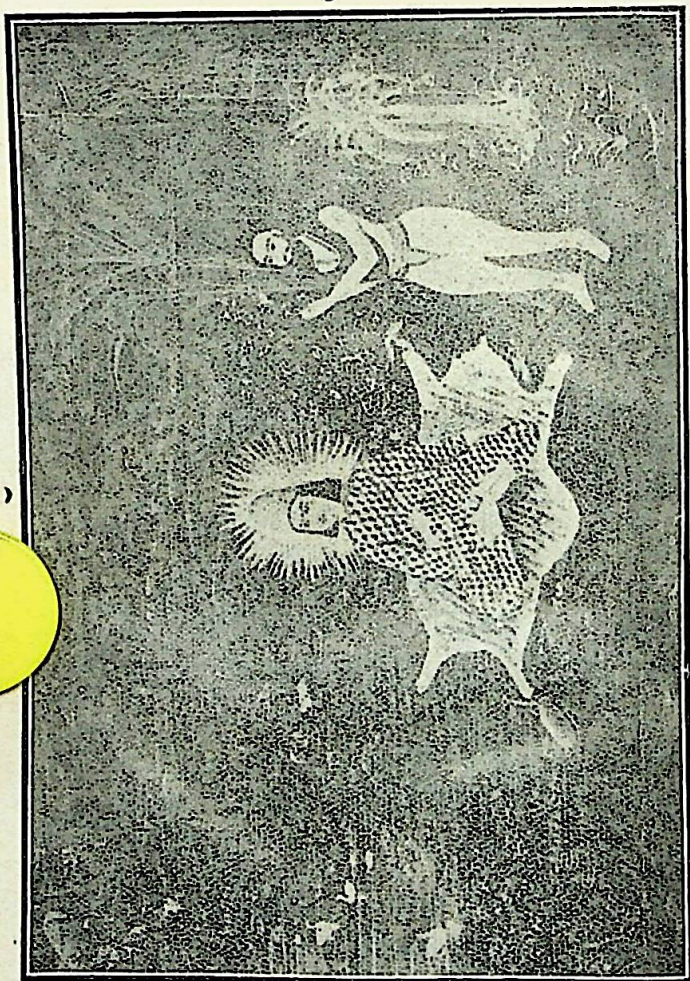
Shri 1009 Swami Bankhandiji     Shri Swami Harnaraindasji Udasin.

# समपर्ण

स्वदेश-प्रेमी, विद्यानुरागी, लोकप्रिय; समुन्नतमना
श्री साधुवेलातीर्थ के अधिपति
परमहंस परिव्राजकाचार्य्य
श्री मदुदासीनवर्य्य
श्री १०८ मत्

## स्वामी हरिनामदास जी

के
पूज्य चर्णारविन्दों में

स्वामी जी!

यह लीजिए यतिवर्य्य मुझसे, भेंट अपनी लीजिए।
निज पूर्वजों का चरित अमृत, पानरुचि से कीजिये॥
इतिहास की रचना विषे, सब आपका आयास है।
उस श्रम का परिणाम शुभ, अब आपके ही पास है॥

कार्ष्णि नारायणदास
M. A.
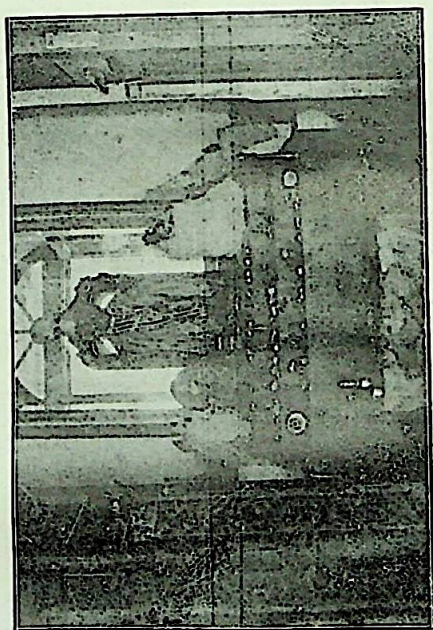
श्री गुरू वनखण्डी बागमें श्री सत्यनारायणजी मन्दिर
लक्ष्मी . तुलशी . सहित

॥ ॐश्री हरिः ॥

# "भूमिका"

श्री विश्वम्भर परमात्मा को अनन्तवार धन्यवाद है। जिसके
पूर्ण अनुग्रह से यह इतिहास लिख रहा हूँ। यह सब खोज
स्वनामधन्य श्री १०८ श्री स्वामी महन्त हरिनामदास जी
उदासीन श्री साधुबेलातीर्थ के अधिपति की है। मेरा तो केवल
लेखनी का ही लिखना है। यद्यपि मैं इस पुस्तक को जीवन चरित्र
के ढंग पर ले गया हूँ। तो भी इसको इतिहास कहना असंगत
न होगा। क्योकि अंग्रेजी में यह कहावत-प्रसिद्ध है किः—
"History is but the biography of the great
men" अर्थात् इतिहास केवल महत्पुरुषों का जीवन चरित्र ही
है। श्री स्वामी बनखण्डीजी नेइस तीर्थ पर यह स्थान वि० सं० १८
८० में बनाया है अब यह शंका होना आवश्यकीय है कि इससे पहिले
यह तीर्थ स्थान किस अवस्था में था। भाई हरीसिंह ने साधु-
बेला विलास अपने मन से गढ़कर लिखा है। जो अशुद्धियों
करके लोकमान्य नहीं है। जिसकी सबूती का सबूत यह है कि
साधुबेला विलास दो-प्रकार के बनाये हैं सो वह भी ठीक नही
बन सके। इसी तरह भाई ज्ञानसिंह जी ज्ञानी तवारीख खालसा
सन् १८९७ ई० वाले दूसरे संस्करण में २५८ पृष्ठ पर
लिखते हैं। किः—

"इत्थे भी बाबे दे मकान बणे होरए हन। इत्थे चल सक्खर
सक्खर ते रोहिड़ी दे बिच सिन्धुदरिया के बिचकार जित्थे हुण
साधुबेला है बोहड़ दे हेठ जा बैठे। ख्वाजे पीर दे मुजावर
चर्चा हो बाबे जी दी वानी सुनकर अते आत्मिक शक्ति देख कर
सब हार गये।"

पता नहीं चलता कि किस आशय को लेकर भाई ज्ञानसिंहजी
ऊपर की पंक्तियाँ लिखी हैं। हमारी दृष्टि में तो वह वमुत
व्याघात के बिना और कुछ लिख ही नहीं सका क्योंकि अत
शब्दों से ही अपने लेखका खण्डन कर रहा है। क्योंकि जी
साधुबेलातीर्थ उन दिनों में अर्थात् वि० सं० १५७६ में निव
स्थान ही था। हाँ बाँकी सिन्धु नद (नदी) के मध्य बगु
देव के स्थान (जिन्दपीर) की उन दिनों अच्छी प्रतिष्ठा हु
अब तक भी यह स्थान उसी रूप में चला आता स
ख्वाजा पीर के मुजावर मुसलमान लोग आज तक वहाँ ही
आये हैं। उनके साथ ही श्री नानकदेव की चर्चा हुई। वहाँ
पश्चिम उत्तर के कोने में नानकदेव ने दाँतुन करके क
फेंका था जिससे टाली का पेड़ अब वहाँ लग गया। सो क
तक भी वह पेढ़ देखने में आता है। इन बातों से सिद्ध होत
कि वि० सं० १८८० से पहिले साधुबेला तीर्थ नहीं बसा
इसी तरह तीसरा झूठ का पहाड़ "श्री गुरुद्वारे दर्शन" के वि
की पुस्तक संग्रहकर्त्ता भाई ठाकुरसिंह ज्ञानी जिसके छपाने
भाई लाभसिंह एण्ड सन्स पुस्तकां वाले पुस्तक भंडार ग्रन्थ
नम्बर १४ एजेन्ट खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी जनरल कमी
एजेन्ट बाजार माई सेवा अमृतसर जो वजीर हिन्द प्रेस में
है। १२ दिसम्बर सन् १९२३ ई० के छपे पन्ने ५६ नम्बर
गुरुद्वारा साधुबेला साहब की सुर्खी देकर गुरुनानकदेव को
ही आना साबित करता है। इनके साथ मुसलमान फ़कीर ख्
अब्दुलहक़ सिन्धी मिला। अते मारफत बचन किये इस तर
मन गढ़न्त बातों की कथा लिखकर गुरु नानकदेव जी का
लिखा है। हम इस ज्ञानी फरिस्ते से पूँछते हैं कि उस वक्त
साथ में थे। यहाँ पर गुरु नानकदेव का आनातो सिन्ध के
और सक्खर के वासिन्दे और न रोहिड़ी के वासिन्दे

तीर्थ के महन्त आना मानते हैं। फिर खबर नहीं इन बातों का मुख और पैर कैसे बनाकर झूँठ को सत्य कहते फिरते हैं। यहाँ तक झूँठ लिखा है कि यहाँ के वृक्ष भी श्री गुरु बनखण्डी साहब जी के लगाये हुओं को भी पहिले के लगाये हुये लिखता है। पुस्त पुस्त श्री साधुबेलातीर्थ के महन्त मालक होते आये हैं उनको भी पुजारी लिखकर हक़ उड़ाना चाहता है। उस आज्ञानी का लिखा हुआ लेख बिल्कुल असत्य तथा बेइतबारी है। यह सबूती कर मैं समझता हूँ कि यह सारी पुस्तक भरोसे योग्य नहीं। जो गुरु-द्वारे उस पुस्तक में लिखे हैं उनके सभी महन्तों को खारिज कर पुजारी लिखने की कोशिश कर पुस्तक छाप के स्थानों में कब्जा करने का रास्ता निकाला है। इसीलिये सम्पूर्ण महन्तों को संभल कर पुस्तक का खण्डन करना चाहिये यही अत्युत्तम होगा।

वि० सं० १८८० से पहिले श्री साधुबेला तीर्थ नहीं था। पहाड़ की टेकरी थी सबसे प्राचीन भक्खर का किला है जो कि वि० सं० १५२१ में बना था और इन्हीं दिनों में मुसलमानों का राज्य होने से जिन्दपीर का भी बहुत जोर था। उसके साढ़ेतीन सौ वर्ष के पीछे वि० सं० १८८० में श्री साधुबेलातीर्थ श्री १००८ श्री स्वामी बनखण्डी साहब जी ने आकर बसाया। नया सक्खर वि० सं० १९०० में बसा था। और बड़ा पुल (Lansdowne Bridge) वि० सं० १९४६ में तैयार हुआ था पूर्व भाग में रोहिड़ी नगर राजा दलूराय अरोड़ बंस क्षत्री ने वि० सं० के आरम्भ में बसाया था वि० सं० १६४६ में मियानीरोडवाला श्री साधुबेला बना वि० सं० १९७५-७८ में ऋषीकेष और वि० सं० १९९९ में तपोबन श्री सिन्धुगंगा के दोनों तटों पर शोभित होते भये। पूर्व काल में कुम्भ का मेलाश्रावण, भाद्रपद महीने में श्री सिन्धु नदी के तीर ही लगता था। इस बारे में शिवपुराण के विश्वेश्वर संहिता के १२ बारह अध्याय का २१ वाँ श्लोक सूचित करा रहा है।

ब्रह्मलोक-प्रदं विद्यात्तपः पूजादिकं तथा।

सिन्धु नद्याँ तथा स्नानं सिंहे कर्कटे रवौ ॥२१॥

अर्थात् सिन्धुनदी में किया हुआ तप, पूजा तथा सिं
कर्क राशि पर सूर्य संक्रमण ( मिलाप ) होने पर अर्थात् श्रा
भाद्रपद महीने में किया हुआ स्नान ब्रह्म लोक को देने वा
है। यह सर्व मान्य है कि सिंधुनदी सम्पूर्ण नदियों से बड़ी
श्री गंगा नदी १५०० मील विस्तृत लम्बी है और ब्रह्म पुत्र १
मील लम्बी है। और सिंधु नदी इन सबसे अधिक १७०० कु
लम्बी है। और यह नदी कई देशों को पावन करती हुई वही
इसी कारण को लेकर कहीं कहीं सिंधु नदी कोनद उदधि, स
आदि की उपमायें मिली हैं। यथा:—

सिन्धूदधि समंतीर्थं, न भूतं न भवष्यति।

अमरां मृत्युमिच्छन्ति अन्येषां तत्र का कथा ॥१६॥

नारायण सरोवर माहात्म्ये अध्याये ॥१॥

अर्थात् सिन्धु उदधि ( सिंधु नदी ) के समान न कोई
हुआ है न होगा वहाँ देवतागण भी अपना शरीर छो
चाहते हैं औरों की क्या कथा कही जावे॥ और भी लीजिये:

सिन्धौ गत्वा विशेषेण, स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः।

मुच्यन्ते नात्र संदेहः श्री नृशिंह प्रसादतः ॥८३॥

पद्म पुराण उत्तर खण्ड १७४ अ०

श्री सिन्धु गंगा जी के तट पर जो पर्व के समय स्नान
हैं वह श्री नृसिंह भगवान् की कृपा से सर्व पापों से छूट जा
इसमें सन्देह नहीं है।

उदासीन शिर मुकुट मणिपूज्यपाद श्री १०८ मत् श्री स्वामी हरिनामदास जी ने कृपा करके "श्री साधुबेलातीर्थ सप्त सिंधु माहात्म्य" नामक पुस्तक जिसमें उपरोक्त विषय के कई एक प्रमाण पाये जाते हैं बनाया है। तथा "गुरु साखी सुयोंदय चरितामृत" आदि ग्रन्थ में अनेक प्रमाण लिखे हैं। यह पुस्तक हिंदी अँग्रेजी और सिन्धी फारसी सब भाषा में छपी है। जो श्री साधुबेला तीर्थ के महंत साहब के पास मिलती है।

सारांश यह है कि किसी काल में सिंधु नदी के तट पर अवश्य कुम्भ का मेला लगता था किन्तु जब बौद्धों का राज्य था तब उन्होंने सनातन धर्म से द्वेष होने कर कारण सब जगह के कुम्भ बन्द करा दिये। फिर जब श्री शंकराचार्य्य जी का उदय हुआ तब उन्होंने हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक गोदावरी में कुम्भ लगने का प्रचार किया। कारण यह था इन दिनों सिंधु देश मुसलमानों के अधिकार में था। इसलिए उन्होंने यहाँ पर बहुत उपाधि समझ कर सिन्धु नदी के तीर पर प्रचार नहीं किया ) एक मोटी बात यह भी लिख देनी आवश्यक समझी जाती है कि यह वही सिन्धु नदी है कि जिसमें और भी गंगा के समान पुनीत सप्त-नदियाँ आकर मिलती हैं। जिसके बहुश्रुत नाम यह है कि :—

(१) व्यासा ( बिपाशा ) २-सतलज ( शतद्रु ) ३-चुनाव ( चन्द्रभागा ) ४-लुण्डा ( सरस्वती ) ५-रावी ( इरावती ६-झेलम ( वितस्ता ) ७-सिन्धु ( अटक )

महाभारत भी इनके नाम वर्णन करने से नहीं रह सका है यथा:—

विपाशाच शतद्रु च चन्द्रभागा सरस्वती।
इरावती वितस्ता च सिन्धुर्देवन दीस्तथा ॥१६॥

सभापर्व अध्याय ६

"यह सिंधु गंगा पृथ्वी पर सतयुग से आई हुई है इसके
पर सतयुगी मुनि, ऋषि तप कर सब कामना पाते रहे हैं । श्री
ब्रह्मलोक को भी प्राप्त होकर अपनी इच्छायें पूर्ण कर ब्रह्मलो
को प्राप्त हो गए हैं। इस लिए प्राचीन लोग इसको सतयुगी गं
भी कहते हैं।"

वेद पुराण आदिकों में तीर्थ या शुभ स्थानों का नाम ज
कहीं आया है वहाँ वहाँ उपरोक्त नदियों का बड़ा ही महात
लिखा है। केवल सिंधु नदी में स्नान करने वालों को वही पु
मिलता है जो कि उपरोक्त सात नदियों में स्नान कर ने से क्यों
वह सातों नदियाँ इसी सिंधु में आकर मिली हैं। इसी क
कलुष हारिणी श्री सिंधु गङ्गा की जगमगाती लहरों के म
यह साधुबेलातीर्थ विराजमान है । जैसा कि समुद्र के म
में मैनाक पर्वत विराजमान है । मानों श्री सिंधु गंगा
साधुबेलातीर्थ को गोद में ले रही है। जैसे क्षीर सागर
शेषनाग पर विष्णु तैसे श्री गुरु बनखण्डि जी बैठे हैं। श्री
चक्रतीर्थ की भी वहाँ स्थिती है। जिसका महत्त्व भी शास्त्रों
यत्र तत्र पाया जाता है।

इस श्री साधुबेलातीर्थ को वि० सं० १८८० को श्री स्व
बनखण्डी जी ने अपने आप ही बनाया था। जिसको आज
सौ चौबीस वर्ष होते हैं। इस इतिहास को जानने की बहु
प्रेमियों की उत्कन्ठा थी । जो परमहंस परिव्राजकाचार्य
१०८ स्वामी हरिनाम दास जी उदासीन की कृपा से आज
हुई है।

**नोटः**—बाबा कर्णदास जी कोठारी, बाबा चेतन प्रक
जी अलीपुर वाले व बाबा ईश्वर दास जी गुरु बनखण्डी सा
के चेले। सेठ टहलमल कम्पनी पुराने सक्खर वाले तथा श्री

वृद्ध साधु ग्रहस्थियों से संचित किए हुए तथा पहिले के लिखे

भी नोट जो श्री स्वामी हरिनामदास जी महाराज के पास एकत्रित थे। सो उनसे लेकर मैंने बड़े परिश्रम के साथ अपनी बुद्धि अनुसार "श्री साधुबेलातीर्थ का संक्षिप्त इतिहास" तैयार किया है। आशा है कि पाठक महानुभाव अवश्य लाभ उठाकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

इसका पहिला संस्करण चैत्रशुक्ला ७ वि० सं० १९७९ में सद्गुरु बनखण्डी जयन्ती के दिन छपा था।

दूसरा संस्करण चैत्र सुदी ७ वि० सं १९८६ में सद्गुरु बनखण्डी जयन्ती के दिन छपा था।

तीसरा संस्करण अंग्रेजी भाषा में तीन साइज का छपा।

चौथा संस्करण सिन्धी भाषा फारसी लिपि में छपा था।

पाँचवाँ संस्करण उर्दू लिपि में वि० सं० १९९१ चैत्र शुक्ला ७ को छपा, इसका यह छठवाँ संस्करण वि० सं २००४ बैसाख वदी ८ मेषसंक्रान्ति को छपा।

विनीतः—

**कार्ष्णि नारायणदास**
B. A.

ॐ
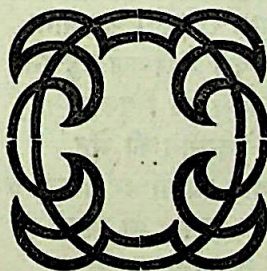
॥ श्री गुरुदत्य प्रसन्नः ॥

# अनुक्रमणिका

## श्री स्वामी गुरु बनखण्डीजी सिद्धेश्वर जीका जीवन चरित्र ।

### प्रथम सर्ग—पूर्व परिचय

—:o:—

## द्वितीय सर्ग—बाल्यावस्था



—o—

## तृतीय सर्ग—तीर्थ यात्रा

## चतुर्थ सर्ग सिन्ध देश में आना



—०—

## पञ्चम सर्ग श्री साधुबेलातीर्थ में स्थिति





—०—

## षष्ठ सर्ग देहावसान



## सप्तम सर्ग



—:o:—

## अष्टम सर्ग

इति

# चित्र-सूची

तत्सद् ब्रह्मणे नमः

[ज]गद्गुरु श्रीचन्द्रदेवाय नमः। श्री स्वामि वनखण्डिने नमः॥

# श्री साधुबेला तीर्थ

का

## संक्षिप्त इतिहास

[त]था श्री श्री १०८ श्री स्वामी बनखण्डी उदासीन निर्वाण साहब जी सिद्धेश्वर का जीवन

### प्रथम सर्ग — पूर्व परिचय

श्री स्वामी बनखण्डी साहब जी को अब के डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर समय व्यतीत हो गया है। किन्तु प्रमाणिक बात है कि इस समय से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहिले अर्थात् १७६० विक्रमी के लगभग में भी वर्तमान थे। और किसी कारण से जो हम आगे चलकर कहेंगे। उन्हें देहावसानकर पुनः वि० सं० १८२० में [अ]पना अवतार प्रगट करना पड़ा। अतः अच्छा होगा जो पहिले

पाठकों को स्वामी जी के वि० सं० १७६० वाले किये हुये श
के चरित्रों का थोड़ा-सा परिचय दिया जाय। स्वामी जी
इससे पूर्व का वृत्तान्त कुछ नहीं मिल सकता है। जब कि वह मो
झाड़ी में तपस्या करते थे। यह मोरन झाड़ी की बस्ती स्थि
नैपाल राज्य में अब तक भी विद्यमान् है, वह दरभंगा राज्य
पूर्व की ओर ५० पचास कोस की दूरी में स्थित है।

तपसोहि परंनास्ति, तपसा विन्दते महत्।
तपसा क्षीयते पापं, मोदते सहदैवतैः॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
तपसासर्वमाप्नोति तपसाविन्दते परम्॥
ज्ञान विज्ञान सम्पन्नः सौभाग्यं रूपमेवच।
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं, ना साध्यं हितपस्यतः॥

इस अग्निपुराण के प्रमाणों के अनुसार तप का महत्व जा
श्री स्वामी जी तीन प्रकार की कायिक, वाचक, मानसिक तपस्या
में निमग्न रहते थे। बस, हमको इसी समय से ही स्वामी
चरितामृत पान करने का सौभाग्य मिलता है। यहाँ पर मो
झाड़ी में एक गुसाईं साधु सन्यासी भी रहता था। जिसके बहु
यजमान तथा याजक पूजक थे। जो प्रायः उसके पास भेंट
चढ़ाने आया करते थे। वह साधु श्री स्वामी जी के तप का प्र
न सहार सका और अकारण ही क्रोध बैरभाव शत्रुता करने ल
और स्वामी जी को यहाँ से हटाने का प्रयत्न करने लगा। अ
गाढ़ विचार के साथ वह गुसाईं साधु नैपाल के राजा के पास
और उससे कहा—हे महाराज! मेरी कुटिया के पास एक
बहुत दिनों से निराहार और निर्जल रहकर आपके स्थान
राज्य को नष्ट करने के लिये घोर तपस्या कर रहा है। अतः
इसका योग्य उपाय करें। इस प्रकार वह साधु तो अपनी
धुता का बर्ताव करके चला गया। किन्तु राजा अत्यन्त भय
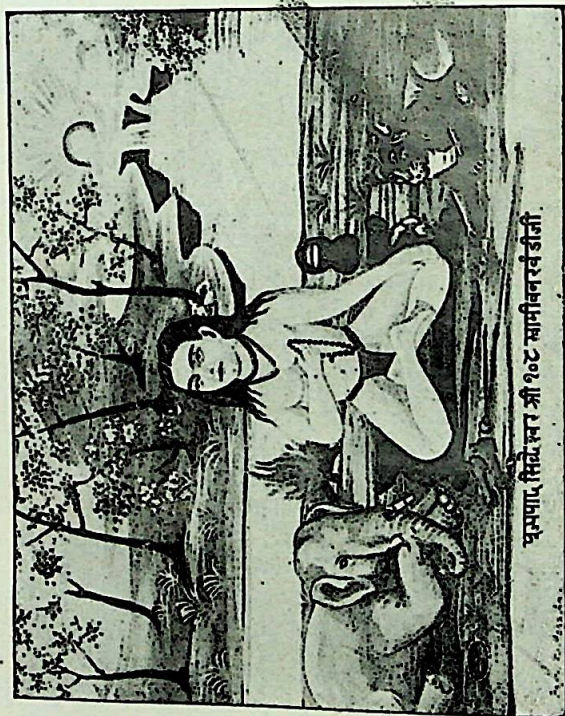
पूज्यपाद सिद्धेश्वर श्री १०८ स्वामीवनखंडीजी.

श्री १००८ योगीराज गुरु बनखण्डिजी महाराज उदासीन

श्री साधुबेला तीर्थ भक्खर (सिन्ध)

होकर अपने मन्त्रियों और सैनिकों को आज्ञा करने लगा कि ऐसे तपस्वी का शीघ्र ही तपोभंग होना चाहिए और वह यहाँ दरबार में भी लाया जावे। आज्ञा होते ही राज्य कर्मचारी बड़े ही शीघ्रगामी अश्वों पर सवार होकर हमारे स्वामी के पास आये, तो उनको एक वृक्ष के नीचे पद्मासन पर योगारूढ़ समाधि में बैठे देखा।

यह शास्त्रोक्त बात कभी असत्य नहीं हो सकती कि सच्चे महात्मा पुरुष के दर्शन करने से कैसा भी क्रूर मन हो एक समय तो शान्त हो ही जाता है। जैसा वाल्मीकि आदिकों के दृष्टांतों से मालूम होता है। यह बात नैपाल के राज्यकर्मचारियों में भी लग गई अर्थात् स्वामी जी के दर्शन करने से उनके मन शीतल हो गये। और जिस क्षोभ से वह आये थे अब वह उनके हृदय में नाममात्र को भी नहीं रहा। क्यों न हो, भला हमारे स्वामी बनखण्डी साहब जी कोरे तपस्वी ही तो न थे वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे वह निम्न लिखित है कि :—

"आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाँतर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥"

अतएव वह हरी परमात्मा की आराधना युक्त और साङ्गोपांग योगाभ्यास सहित त्रिविधितितिक्षा कर रहे थे।

किसी भी राज्यकर्मचारी को साहस नहीं हुआ जो कि स्वामी जी से कुछ कह सके। जब योगारूढ़ स्वामी जी ने समाधि से अपने नयनार्विन्दों को खोला तब वह कर्मचारी हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे कृपालू आप त्रिकालज्ञ हैं। हम राजा से आज्ञा किये हुये आपको बुलाने के लिये यहाँ पर आये हैं। आप हमको सर्वथ

निर्दोषी समझकर वहाँ पधारने की कृपा करें स्वामी
प्रसन्न मुखारविन्द उनसे कहने लगे कि "हम सब जानते हैं।
तुम लोग निर्दोषी हो घबड़ाओ नहीं, हम तुम्हारे से पहिले।
वहाँ पहुँच जावेंगे; तुम लोग चलो।

स्वामी जी तो पवन रूप होकर क्षण भर में नैपाल पहुँ
भी गये किन्तु वह कर्मचारी अभी वहीं पर थे वह स्वामी जी
वहाँ न देख मूढ़ होगये और इधर उधर खोजने लगे किन्तु स्वा
जी वहाँ पर होते तो मिलते उनको वह नहीं मिले अतः वह भट
भटकते कुछ दिनों के बाद ही नैपाल पहुँचे तो वहाँ पहुँच
उन्होंने स्वामी जी को शहर के बाहर एक पेड़ के नीचे सिद्धासन
मेंबैठे देखा। यह अलौकिक घटना को देखकर वह कर्मचा
विस्मित होगये। और यह सारा वृत्तांत अपने राजा को जा सुना
ऐसा दिव्य समाचार सुनकर राजा के सब तर्क वितर्क उड़
और मन ही मन में पश्चाताप कर के उस गुसाईं साधु की नि
करने लगा तथा अपने सब मंत्री व कर्मचारी को लेकर स्वा
जी के पास आया। और अपने किये दुष्कर्म की क्षमा माँ
लगा कि हे दयालु मैं अत्यन्त ही डरपोक तथा निकृष्ट ह
हूं। जो एक पिशुन गुसाईं के कहने पर मैं आप से संदि
होकर इतनी अवज्ञा करने को उद्यत हो गया हूँ। इस अप
की क्षमा आपसे मैं बारम्बार माँगता हूँ आप पूर्ण कृपालु हैं;
मेरी नीचता को अवश्य क्षमा करेंगे। स्वामी जी उसके
पश्चाताप करने से प्रसन्न होकर उसकी तरफ प्रेममयी दृष्टि
देखने लगे। तब फिर राजा कहने लगा कि हे सिद्धशिरोमणि
आप यहाँ पधारकर मेरी नगरी को पावन कर रहे हो। मैं
से ईश्वर का अतिही धन्यवाद करता हूँ। हे प्रभु! मैं आपका से
होना चाहता हूँ, आशा है कि इस दीन को अपनाय के आप अ

शरण में लोगे। मन्त्रोपदेश करोगे और हमारे स्थान में पधारने के लिये अपने चरण कमलों को कष्ट देने की कृपा करोगे। इसमें मैं अपने को कृतकृत्य मानूँगा। तब स्वामी जी सुस्मित बदन से राजा को कहने लगे कि हे राजन् मैं तेरी श्रद्धा और प्रेम देख के अति ही प्रसन्न हुआ हूँ। और आज से लेकर मेरा तेरे ऊपर पूर्ण अनुग्रह रहेगा तत्पश्चात् स्वामी जी राजा के स्थान पर गये और गुरुदीक्षा राजा को दिया अर्थात् सेवक बनाया और उसके कलि कलुषित हृदय को अपने शुद्ध तथा उत्तम उपदेशों से शुद्ध हृदय कर दिया। तथा उसको वरदान दिया कि जब तेरे ऊपर कोई आपत्ति आवे तब हमारा स्मरण करने से तेरी सब आपदाएँ दूर हो जायँगी। इतना कहते ही स्वामी जी अन्तर्धान हो पलमात्र में अपने पूर्व स्थान मोरन झाड़ी में पहुँच गये। इसके पीछे वह राजा प्रति वर्ष एक वार अपने सारे परिवार सहित स्वामी जी के दर्शन को जाता रहा। आज तक भी जो वहाँ का राजा सिंहासना-सीन होता है। वह अपनी रक्षा के लिये वहाँ की भस्मी प्रति वर्ष मँगाता रहता है।

कुछ दिन बाद चरमपोश दूसरा नाम हरीदास जी उदासीन साधु जो कई दिनों से स्वामी जी के दर्शन के लिये तड़प रहा था ढूढ़ते ढूढ़ते बड़े ही प्रयास से स्वामी जी के साथ आयके मिला जो वहाँ इनके समीप में ही रहने लगा। वह सदैव अपने पास मृगचर्म रखते थे इसलिये उनका शुभनाम चर्मपोश पड़ गया था। भेड़ियामठ, धूनीसाहब, तकियासाहब नाम से तीन स्थान थे जहाँ पर बैठकर स्वामी जी नित्य समाधि लगाते थे। प्रातःकाल चार बजे से आठ बजे तक भेड़ियामठ पर, आठ बजे से शाम के सात बजे तक धूनीसाहब में, ७ बजे से अर्द्धरात्रि के बाद ३ बजे तक तकिया साहब में योगारूढ़ होकर समाधि में

लवलीन हो जाते थे शेष १ घंटा शौच स्नानादि क्रिया इत्यादि में व्यतीत करते थे। इन तीनों स्थानों के प्रत्येक के मध्य अन्तर १३ तेरह मील से कम नहीं है। किन्तु हमारे चरित्रनायक श्री स्वामी बिना किसी क्षण व्यतीत किये ही अपने यौगिक से एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँच जाते थे।

उपरोक्त साधु चर्मपोश किसी समय में एक असम खण्ड यानी ( पत्थर की चट्टान ) नदी के तट पर बैठकर अ पाँव धो रहे थे। तो इतने में वह पत्थर के पास में पड़े चिमटे से लग गया और वह लोहा सोने के रूप बदल गया। चरमपोश ने उसी समय उसे पारस पत्थर पहिच कर उस स्वर्णमय चिमटे के साथ पारस को भी नदी में दिया। यहाँ पर प्रीतमदास नामी एक साधु जो यह सारा वृ न्त आद्योपान्त देख रहा था वह उनके सामने होकर कहने ल कि हे निष्काम ( कामना से रहित ) महात्मा। यदि यह पा पत्थर आपको नहीं चाहता था तो हमारे जैसे को दे देते तो कुम्भ आदि पर्वों पर अनेक भिक्षुक साधुओं को तृप्त क आपका यश कीर्ति ( गुणानुवाद ) गाते रहते। साधु चरमपे जो पूर्ण विरक्त थे, फिर स्वामी बनखण्डी जी महाराज जैसे प त्यागी के साथ रहने से तो उनको और ही रंग चढ़ गया ( अर्थात् अत्यन्त त्यागी बन गये थे ) उन्होंने हमारे नवं परिचित साधु प्रीतमदास को माया और लोभ के वश में जानकर उ कहने लगे कि हे मित्र ! यह जगत् के पदार्थ झूठे हैं जब यह नहीं रहते तब इसमें ममता कहाँ तक चल सकेगी। यह जान हमने सब कुछ त्याग कर श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज सहारा लिया है और इन्हीं को अपना सब कुछ मान रखा यदि आप भी लोक परलोक का कल्याण चाहते हैं तो शुद्ध से श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज के अर्थ तपस्या करो।

शीघ्र प्रसन्न होकर अपनायेंगे याने अपना करेंगे और आपकी सब अभिलाषायें पूरी करेंगे। यह वचन सुनकर प्रीतमदास जी का मन आकर्षित हो गया और उनसे स्वामी जी का स्थान तपस्या प्रकार आदि पूछा (याने तप करने की जगह पूछी)। चरमपोश जी ने स्वामी जी की तीन जगहों पर तपस्या करने का सब वृत्तान्त उनको सुनाया और यह भी कहा कि स्वामी जी अदृश्य रूप में रहते हैं और उनके दर्शन करने के लिये बड़ी कठिन साधना की आवश्यकता है तब फिर साधु प्रीतमदास जी ने धूनी साहब के वृक्ष के नीचे बैठकर अपने इष्टदेव श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज की उपासना में मग्न होकर आराधना करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् स्वामी जी उनकी भक्ति से प्रसन्न हुये और उनकी परीक्षा लेने के निमित्त अपनी कमर को जंजीर को सर्प के रूप में उनके पास भेजी तो मायावी सांप प्रीतमदास के शरीर में लपटने लगा और शीघ्र ही स्वामी जी के पास लौट कर आ गया। प्रीतमदास जी को तो यह घटना देखकर आश्चर्य होना ही था परन्तु अब वे इस सोच में पड़ गये कि यह सर्प बहुत देर तक तो मेरे शरीर में लिपटा रहा है परन्तु तौ भी इसने मेरे को काटा नहीं, मैं जान गया कि दो जीभों वाला सर्प अवश्य मायावी है। मेरे भाग्य का नक्षत्र अब उदय होनेवाला है। वास्तव में यह हमारे को स्वामी जी का रास्ता बताने को ही आया था ऐसा ख्याल करके वह उस सांप के पीछे देखने लगे तो एक ग्वाला उनको दृष्टि गोचर हुआ जिससे प्रीतमदास जी ने स्वामी जी का मार्ग पूछा। ग्वाला—"स्वामी जी तो यहाँ ही मिलेंगे" ऐस कह कर वह अलोप हो गया। प्रीतमदास जी अचम्भे में और उत्कण्ठा में मानसिक उद्गार रूपी लहरों में ज्यों ही गोते खा रहे थे याने मन के आशा रूपी समुद्र में लोट पोट हो रहे थे इतने ही में एक ब्राह्मण नजर पड़ा जिसके पूछने पर प्रीतमदास जी ने

अपना नम्र निवेदन करते हुये स्वामी जी के दर्शनार्थ अ
इच्छा प्रकट की। हम पहले ही पाठकों को बतला देते हैं कि
ग्वाला या ब्राह्मण स्वामी जी ही केवल अपने उपासक की प
के लिये बनकर आये थे सो वह ब्राह्मण उसको यह कहता हु
अलोप हो गया कि अरे भैय्या सामने तो स्वामी जी बैठे हैं।
शब्द पूर्ण होते ही उनके नेत्रों में बिजली सरीखा तेज आ
और दिव्य मूर्ति धारी स्वामी जी का साक्षात् दर्शन हुआ। प्री
दास जी दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुये।

"प्रेमाश्रु तिसके लोचनों से निकल कर बहने लगे।
फिर भक्ति विह्वल कण्ठ से वे यूँ बचन कहने लगे ॥"

कि हे दीन दुःख निवारक आज मैं अपने जन्म की सफ
समझ रहा हूँ और आपके दर्शन करने से मैं कृतार्थ होगया। ऐ
नम्र प्रार्थना सुन श्री स्वामी जी उसका अभिनन्दन कर आशी
दे कहने लगे कि हे पुत्र ! हम तेरे से बहुत प्रसन्न हैं जो इ
हो सो कहो, हम उसे पूरा कर देंगे। प्रीतमदासजी सादर क
लगे कि हे दया के घर यह किंकर केवल आपके ही चरण-क
की सेवा करना चाहता है, इससे अधिक और मेरे लिये
असार संसार में कोई भी प्यारी वस्तु नहीं है, बस मेरे को के
इस प्यारी वस्तु की आवश्यकता है।

संसार में सब विधि हमारे सर्व साधन हो तुम्हीं।
तन हो तुम्हीं मन हो तुम्हीं धन हो तुम्हीं जन हो तुम्हीं ॥

श्री १०८ स्वामी जी ने इनकी सेवा करने की बड़ी इ
देखकर अपने पास ही रहने की आज्ञा दिया। इसमें कोई सं-
नहीं कि स्वामी जी पूर्ण सिद्ध थे। शास्त्रों में आठ प्रकार की
सिद्धियाँ वर्णन की गई हैं उन पर स्वामी जी का पूर्ण अधि
था। वे सिद्धियाँ शास्त्रों में जिस प्रकार से वर्णित की गई हैं
ही हम पाठकों को बतलाने के लिये यहाँ लिखते हैं :—

अणिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्यं महिमा तथा ।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता ॥

( १ ) अणिमा—बहुत छोटे से छोटा रूप धारण करना ।
( २ ) लघिमा—बहुत हलके से हलका रूप धारण करना ।
( ३ ) प्राप्ति—कोई भी वस्तु प्राप्त करने की शक्ति होनी ।
( ४ ) प्राकम्य—इच्छा की स्वतन्त्रता का होना ।
( ५ ) महिमा—इच्छानुसार बड़े से बड़ा रूप धारण करना ।
( ६ ) इशित्व—किसी के ऊपर भी अधिकार जमाने की शक्ति होनी ।
( ७ ) वशित्व—किसी को भी अपने वश में रख सकना ।
( ८ ) कामावासायिता—सांसारिक भोगों तथा इच्छाओं का संयम रख सकना ।

स्वामी जी केवल सिद्धियों के अधिपति ही नहीं थे किन्तु प्राचीन सिद्ध लोग भी उनसे मिलने के लिये कभी-कभी आया करते थे । जैसे सिद्ध गोरखनाथ की स्वामी जी के साथ प्रत्येक एकादशी पर गोष्ठी हुआ करती थी । उपरोक्त साधु प्रीतमदास जी को ही इस दिव्य गोष्ठी सुनने का सौभाग्य मिलता रहा ।

साधु प्रीतमदास जी को अब पाँच वर्ष व्यतीत हो गये थे । एक दिन उन्होंने स्वामी जी को कहा कि हे पूजनीय स्वामी जी ! संसार में आकर कुछ काम ऐसा करना चाहिये जिससे सब प्राणियों का उपकार और अपनी जाति की उन्नति होवे । मेरी इच्छा यह है कि उदासीन साधुओं को साथ लेकर अखाड़े की बुनियाद बाँधूँ । इसमें हमारे उदासीन सम्प्रदाय का यश होगा और साधु समाज तथा विद्यार्थी वर्ग आदि की सुख प्राप्ति का साधन बन जायगा । इसके उत्तर में श्री स्वामी जी कहने लगे कि कोई भी काम आसक्ति और फल की इच्छा से रहित होकर

करना चाहिये। आगे परिणाम में सुख-दुःख और फल पर प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होना चाहिये।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
फले सक्तो न वद्ध्यते ॥
गीता अ० २ श्लोक

श्रीकृष्ण भगवान् जी के इन वचनों का ध्यान देते हुये संसार में सब काम करना चाहिये। यहाँ से इस धूनी की भभूती लेते जाओ इसका तिलक लगाते रहना जिसको नित्य प्रति पूजा भी करते रहना।

इसके बाद स्वामी जी ने साधु प्रीतमदास जी के मस्तक पर भभूती लगाई और जटा बट कर सिद्ध सादिक की प्रथा पूर्ण की और उनको शुभाशीर्वाद देकर विदा किया। आज तक प्रयाग, हरद्वार, काशी इत्यादि तीर्थों में जो अखाड़े के मकान हैं वह सब इन महात्मा के परिश्रम और कृपा का फल है। कनखल में जो उदासीन अखाड़ा है वह आज तक भी साधु प्रीतमदासजी के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ कालोपरान्त दो महापुरुष संसार के सुखों को छोड़कर पूर्ण विरक्त अवस्था को प्राप्त होकर स्वामी जी को अपनी रक्षा का घर बनाने के लिये धूनी साहब में आ गये। स्वामी जी उनकी वैराग्य दशा को देखकर अति प्रसन्न हुये और उनका जौरा भौरा नाम रख कर दोनों को अपना चेला बना उदासीन भेष देकर अपनी सेवा में रख लिया स्वामी जी कुटिया के भीतर जब समाधि लगा कर बैठे रहते थे तभी ये द्वार रक्षा करते रहते थे क्योंकि पहले ही कहा हुआ चतुरामठ वाला गोसाई साधु कभी कभी स्वामी जी की साधनाओं में विघ्न डाला करता था। जंगल से फल फूल लाने और कुटिया का मार्जन लेपन वगैरह सब काम बड़ी श्रद्धा और प्रेम

से करते थे। एक समय इन दोनों चेलों का चित्त आम खाने को करने लगा और अपनी अभिलाषा स्वामी जी को प्रकट की। स्वामी जी ने उनसे कहा कि यहाँ से थोड़ी दूर पर चतुरामठ में एक गोसाईं साधु रहता है वहाँ पर उसका एक सुन्दर हराभरा बाग़ है और तुम उससे जाकर आम ले आओ। वे दोनों सत्य वचन कहकर वहाँ गये और आज्ञानुसार यथोचित रीति से गोसाँईं से आम माँगने लगे किन्तु बबूल से भी कहीं बेर मिलते हैं।

हमारे पाठक तो इस गोसाईं से पूर्ण परिचित ही हैं सो इसने अपनी क्रूर और कठोर प्रकृति के अनुसार इन्हें निराशा का उत्तर देकर कहा कि यदि तुम्हारा गुरु समर्थ है तो वह अपनी बाटिका क्यों नहीं लगाता। हमारे स्वामी जी के प्रिय शिष्य निराश होकर अपने गुरु जी के पास खाली हाथ चले आये। और सारा वृत्तांत ज्यों का त्यों स्वामी जी को सुनाया। श्री स्वामी जी उनसे कहने लगे कि हे पुत्रो कोई डर नहीं, किसी प्रकार से आज नहीं बल्कि अभी ही तुमको आम फल खिलाते हैं। अच्छा यहाँ कोई आम का पेड़ न होवे तो न सही, सामने जो सालवृक्ष देख रहे हो इनसे आम तोड़ ले आओ। यह चिमटा ले जाओ जिस किसी पेड़ को भी यह चिमटा लगाओगे इसमें ऋतु अनुसार हमेशा आम ही लगते रहेंगे तुम कोई संशय मत करो। मेरे योग प्रभाव से ऐसा ही होगा जैसे मैं कह रहा हूँ। आज्ञानुसार वे चिमटा लेकर गये और चार-पाँच साल के पेड़ों को स्पर्श कराया तो उनमें आम लग गये।

और टोकरी भर कर स्वामी जी के पास लाये जहाँ सब खाकर तृप्त हुये। आज तक ये साल के पेड़ विद्यमान हैं जिनमें पत्ते वगैरह तो साल वृक्ष जैसे ही हैं और फल आम का ही देते हैं कोई भी देखकर अपना संशय निवृत्त कर सकता है।

एक समय भेड़िया मठ में स्वामी जी ने जौरा भौरा दोनों शिष्यों को कहा कि मेरे को प्राण दसवें द्वार में चढ़ाकर दस दिन की समाधि में बैठना है मेरा शरीर ऐसा ही लगेगा मानो मेरा देहावसान हो गया है किन्तु मैं दस दिन के पीछे अपने आपही जागृत हो जाऊँगा। तुम लोग बिल्कुल ही निःशङ्क रहना और द्वार की अच्छी तरह रक्षा करना। यह बात भी स्मरण रखना कि यह काम कोई मेरे लिये पहली बार नहीं है आगे भी कई बार ऐसी समाधियों में मैं रहा हूँ। इस प्रकार स्वामी जी दोनों को बार-बार समझा के अपनी समाधि में स्थित होते भये। दो तीन दिन के बाद जब हमारे पूर्व परिचित द्वेषावसंयुक्त गोसाईं जी को इस समाधि का पता लगा तब और ही किसी षड़यन्त्र का उपाय करने लगा। वह इस अवसर को देखकर जौरा भौरा को आकर कहने लगा कि हे मूर्खो! तुम्हारा गुरु तो भीतर मरा पड़ा है और तुम दोनों यहाँ चैन में बैठे हुये हो यह कौन से धर्म शास्त्र की आज्ञा है कि गुरु के तो भीतर प्राण चले गये हों (देहान्त हो गया हो) और चेले अपने खाना-पान का काम नियमपूर्वक करते हों, तुम बड़ा ही अयोग्य काम कर रहे हो चलो देखो तो सही कि तुम्हारे गुरु जी की कोई नाड़ी भी चलती है, शीघ्रता करो, उनके शरीर का दाह कर्म करके अपने गुरु की अन्तिम क्रिया करो नहीं तो राजा को पुकार भेजकर तुम लोगों को बड़ा कड़ा दण्ड दिलाऊँगा। वे विचारे वहुत ही सीधे सादे थे गोसाईं जी के प्रकोप में वह अपने स्वामी जी की बातें ही भूल गये और गौसाइं रचित षड्यन्त्र के पेंच में फँस गये तथा स्वामी के शरीर को दाह करने की तैयारी करने लगे।

आग लग गई आधा शरीर जल गया तब स्वामी जी दिव्य शरीर धारण कर प्रगट होते भये और अत्यन्त क्षुब्ध हो कर

गोसाईं जी को कहने लगे यद्यपि हम जानते थे कि "व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः" अर्थात् जो मायावियों के साथ अपनी माया नहीं खेलते, वे पराभव को प्राप्त होते हैं किन्तु हमने तेरा कोई बुरा नहीं किया तिसपर भी तुमने हमारे साथ बहुत अत्याचार किये। हमारी साधनाओं में कई विघ्न पाया, बाधाएँ डाली अब भी हम केवल तेरे को इतना ही शाप देते हैं कि तेरी गद्दी पर जो भी तेरा अनुयायी बैठेगा वह यती नहीं रहेगा उसको गृहस्थी होना पड़ेगा। गोसाईं ने उत्तर में कहा कि आपके समीप में मेरे को रहते हुए मेरा प्रभाव दिनों-दिन कम होता रहा इसलिए मेरा इतना परिश्रम था आपने जो मेरे को शाप दिया है उसके उत्तर में मैं भी आपको कहता हूँ कि आपका स्थान भी सिंह और हाथियों की बस्ती बना रहेगा और आपका कोई भी शिष्य इस स्थान पर नहीं रहेगा जिससे मेरे स्थान का प्रताप बना रहेगा। वहाँ ही जौरा भौरा दोनों हाथ बाँध कर काँपते हुए खड़े थे उनको स्वामी जी ने अभय प्रदान कर कहा कि गोसाईं फिर भी साधु भेष में हैं इसलिए हम उसके वचन कुछ अंशों में ग्रहण करते हैं तुम लोग जाओ और एक लक्कड़ का थम्भा ३॥ हाथ लम्बा लाओ आज्ञा होते ही थम्भा लाया गया और उसको कुटी में गाड़ने की स्वामी जी ने आज्ञा दी और स्वामी जी कहने लगे कि और कोई हमारा शिष्य यहाँ नहीं रहे किन्तु यह मौन व्रतधारी मोहनदास ( थम्भा ) शिष्य यहाँ का चिरस्थायी महन्त रहेगा। यद्यपि यह पुरुष के माप जितना केवल ३॥ हाथ का ही है तो भी किसी की ताकत नहीं जो इसको उखाड़ सके।

फिर जौरा भौरा के प्रति कहने लगे कि हमको संसार में बहुत ही उपकार के काम करने हैं इसलिए थोड़े समय के पीछे हम कुरुक्षेत्र में पंडित रामचन्द्र के यहाँ अवतार धारेंगे। हमारा

नाम और रूप यही होगा। यहाँ मेरी समाधि बना लेना और अन्त काल तक तुम दोनों भी यहाँ निवास करते रहना। तुम्हारी समाधियाँ भी यहीं बनेंगी। तुम लोगों ने मेरे साथ बहुत ही प्रेम रखा है इस वास्ते दूसरे जन्म में भी तुम दोनों मेरे साथ आकर मिलोगे। जबकि हम उदासीन मोहाँ साहिब की सम्प्रदाय से दीक्षित होकर सिन्धु देश में श्री साधुबेला तीर्थ को प्रकट करेंगे। तब तुम दोनों हमारे शिष्य होकर हरिनारायणदास और हरिप्रसाद नाम वाले रहोगे। एक कोठार की गद्दी पर बैठेगा और एक महन्त की गद्दी पर बैठेगा। जो समय पाकर कोठारी के शिष्यवंश में ही महन्ती की गद्दी आ जायगी। आज तक स्वामी जी का उपरोक्त शिष्य मोहनदास भेड़ियामठ में विराजमान है। स्वामी जी की तथा जौरा भौरा की समाधियाँ भी बनी हुई हैं। सुना जाता है कि धूनी में लकड़ियाँ हाथी आकर डाला करते थे। झाडू लगाने का काम सिंह आकर अपनी पूँछों से किया करते थे किन्तु थोड़े समय से यह बात बन्द हो गई है। धूनी में लकड़ियाँ तो अब भी स्वयं ही सरकती जाती हैं और सदैव धूनी जलती रहती है और ५-६ साल के पेड़ जिनको स्वामी जी के चिमटे का स्पर्श हुआ था वे भी अभी तक धूनी साहब में हैं और बराबर हर वर्ष उनमें आम लगते रहते हैं अचम्भे की बात यह है कि उन पेड़ों में पत्ते शाखाएँ इत्यादि दूसरे सब साल के वृक्ष के हैं और केवल फल आम के हैं।

श्री साधुबेला तीर्थ, सक्खर सिन्धु
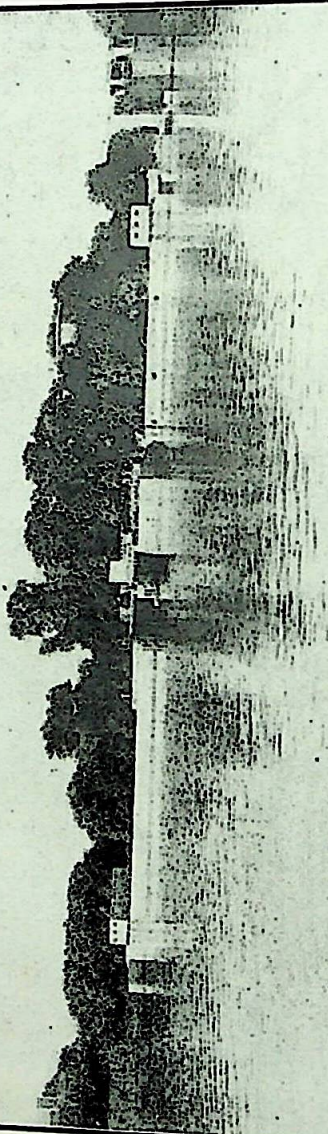
# द्वितीय सर्ग

## वाल्यावस्था

नीपत का तीसरा युद्ध समाप्त हो गया था और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत-भूमि पर अधिकार जमता जाता था और योरोप में प्रसिद्ध शूरवीर नैपोलियन बोनापार्ट ( Napoleon Bona Parte ) के जन्म लेने में अभी केवल ६ वर्ष ही पड़े थे कि इस समय में अर्थात् वि० सं० १८२० बराबर ई० सं० १७६३ में श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज ने अवतार धारण किया और योग शास्त्र की सत्यता रखने के लिये सच्चे साधुओं का आदर्श रूप बनने के लिये शताब्दियों से मुसल्मानों के अत्याचारों से पीड़ित तथा अज्ञान सागर में बहते सिन्धियों ( सिन्ध देश निवासियों ) पर बड़ी कृपा कर ज्ञान नौका पर चढ़ाकर पार करने के लिये एक नष्ट-भ्रष्ट तीर्थ गंगा का पुनरुद्धार करने के लिये तथा अज्ञान अन्धकार के साथ संग्राम जोड़ने के लिये एक महान् आत्मा ऐसे युद्धस्थल (कुरुक्षेत्र) थानेश्वर ग्राम में प्रकट होती भयी। जहाँ कौरवों पाण्डवों

से आदि लेकर कई वीरों ने अपनी वीरता का परिचय दिया था
ऐसे पवित्रात्मा तथा योग सिद्धियों के अधिपति बालक्रीड़ा देखने
का सौभाग्य कुरुक्षेत्र नगर में एक गौड़ ब्राह्मण को ही मिला
पंडित रामचन्द्र शर्मा ही उस गौड़ ब्राह्मण का शुभ नाम था
जिनके गृह में ऐसे बालक ने अवतरण किया था। आप अच्छे
विद्वान् थे और कर्मकाण्ड में भी निष्ठावाले थे, साथ में उदारात्मा
और दानवीर भी थे। कैलाशपति महादेव में आपकी प्रगाढ़ प्रीति
थी। सर्वगुण सम्पन्न होते भी पूर्ण युवा अवस्था तक एक प्रकार
सर्वसुख सम्पन्न ही थे। एक कमी वह यह थी कि आपको पुत्र
सन्तान न होती थी आप शास्त्रों के ज्ञाता थे। अतः यह भी जानते
थे कि—

> अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
> धनं धान्यं च रत्नं च तत् सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥
> नभक्षितं यत् पुत्रेण तद्द्रव्यं निष्फलं भुवि।
> पुत्रादपि परो बधुर्न भूतो न भविष्यति ॥

पुत्र बिना गति नहीं होती। स्वर्ग के न जाने से कोई सुख
कमती नहीं होता, जो परमात्मा के भजन और विद्या से गति
होती है और बड़े सुख की प्राप्ति होती है। इन बातों को विचारने
से आपको सर्व सुख तथा अपनी विद्वता फीकी लगती थी।
मनोरमा आपकी धर्मपत्नी का शुभ विधान था। यही ऐसे भाग्यवान
बालक को अपना स्तन पान कराने को सौभाग्यवती हुई जो
पतिव्रता स्त्री के लक्षण कहे हुये हैं वे सब इनमें थे किन्तु पुत्र को
गोदी में क्रीड़ा कराने से वंचित रहने का दुःख इनको भी बहुत
ही सता रहा था।

श्री स्वामी मेलाराम जी उदासीन उन दिनों में एक प्रसिद्ध
महात्मा थे। सौ गिन्नीवाले मण्डलेश्वर कहे जाते थे क्योंकि

उनकी मण्डली में एक सौ साधु लोग रहते थे वे अपनी मण्डली के साथ देशाटन करते-करते किसी समय अपने उदासीन गुरुद्वारे कुरुक्षेत्र में आये। आप उस समय के ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न अद्वितीय महात्मा थे। कई गृहस्थी तथा साधु लोग आपकी शरण में रहकर अपनी मनोकामनायें पूर्ण किया करते थे। ऐसे चरित्रों से ख्याति भी आपने बहुत ही प्राप्त कर ली थी।

पण्डित रामचन्द्रजी साधुसेवी पहले से थे ही किन्तु युवावस्था की समाप्ति होते तक भी जब इन्होंने देखा पुत्र सन्तान नहीं हुई है तब वे इस अभिलाषा से स्वामी मेलारामजी की शरण में जाने का उद्यम करते भये। वहाँ जायके उन्होंने स्वामी मेलारामजी को बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अभिवन्दन किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हे पूज्यपाद महात्मा श्री मैं आपका दर्शन प्राप्त कर निःसदेह अपने को अहोभागी समझता हूँ। आप जैसे महात्माओं के समक्ष में पुण्यात्मा ही आ सकते हैं। स्वामी मेलारामजी पण्डित रामचन्द्र की श्रद्धा और भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुये और उनको कहने लगे कि हे श्रद्धास्पद आप बड़े ही सज्जन दीखते हैं आपकी कोमल वाणी ने हमारा मन प्रफुल्लित कर दिया है। हम चाहते हैं कि आप हमसे कुछ माँग लेवें। पण्डित रामचन्द्रजी कहने लगे कि हे पूजनीय स्वामी जी इसमें कोई संशय नहीं है कि आप सब कुछ दे सकते हैं किन्तु इस समय मेरी इच्छा है कि आप अपने पवित्र चरणकमल हमारे गृह में पधार कर हमको पावन करें। स्वामी मेलारामजी तो उनकी बात मानने को पहले ही कह चुके थे अतएव बड़ी प्रसन्नता से उनके घर पर गये। पण्डित रामचन्द्रजी तथा माता मनोरमा ने स्वामी मेलाराम जी की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और उनका चरणामृत स्वयं ग्रहण करके सारे गृह में छिड़काया और बड़े प्रेम से उनको भोजन भी कराया। तत्पश्चात् कुछ पारमार्थिक

वार्तालाप के अनन्तर स्वामी मेलारामजी ने पण्डित रामचन्द्र
कहा कि आपकी श्रद्धा तथा साधु भक्ति कथन से बाहर है।
बहुत प्रसन्न होंगे यदि आप हमसे कुछ माँगलें।

पण्डित रामचन्द्रजी ने कहा कि हे देव आप सब कुछ जा
हैं कि हम पुत्र सन्तान से आज तक वंचित ही रहे हैं। शास्त्रों
पढ़ा है कि सत्पुत्र से ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुख
होते हैं यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो यही हमारी इ
पूर्ण करें। स्वामी मेलाराम जी कहने लगे कि हे ब्राह्मण कु
दीपक ! आपके गृह में दो पुत्र होंगे किन्तु उनमें से पहला ह
देना। तदनन्तर स्वामी मेलाराम जी यथायोग्य रीति से वहां
विदा हुये। वि० सं० १८२० को प्रविष्ट हुये पूरा सप्ताह
केवल हुआ था और श्री दुर्गाअष्टमी में एक दिन,
रामजयन्ती में दो दिन तथा कामदा एकादशी में चार दिन पहे
अर्थात् चैत्र मास के शुल्क पक्ष की सप्तमी तिथि को सोमवार
दिन रोहिणी नक्षत्र में पण्डित राममन्द्र के २१ कुलों को तारने
धर्म की ध्वजा फैलानेवाला, योग सिद्धियों के चमत्कार दि
वाला भावी बालक श्री स्वामी मेलाराम जी के बचनानुसार
गौड़ ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होता भया। इस कहने
अत्युक्ति न होगी जो हम इस प्रकार कहें कि पण्डित राम
को इस दिव्य बालक के जन्म से इतनी ही प्रसन्नता हुई जि
राजा दशरथ को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के ज
हुई थी। पण्डित रामचन्द्र जी ने बहुत सा द्रव्य दान
तथा सुयोग्य द्विज पण्डितों से इस अलौकिक बालक का ज
कर्म संस्कार कराया गया तथा जन्म लग्न के अनुसार जन्म
भी बनाई गई। पाठकों के विनोदार्थ हम कुण्डली भी
देते हैं।

इनका संक्षेप से फलादेश भी दिखाते हैं

नीचस्थितो जन्मनि योग्रहः स्यात्तद्राशिनाथोऽथ दुश्चिक्यनाथः।
भवेत् त्रिकोणे यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्धार्मिक चक्रवर्ती ॥

केन्द्रे शुभोदयै कोऽपि वली विश्व प्रकाशकः।
सर्वे दोषाः क्षयं यान्ति दीर्घायुश्च भवेत्प्रभुः॥

अर्थः—जन्म स्थान में जो कोई नीच ग्रह बैठा होवे उसके का मालिक अथवा तीसरे स्थान का मालिक यदि त्रिकोण अथवा केन्द्र में बैठा होवे तो वह पुरुष चक्रवर्ती राजा या क विश्व में प्रकाश करने वाला होता है और उसके सर्व नाश हो जाते हैं तथा वह बड़ी आयु वाला प्रभु होता है॥ चन्द्रमा का ग्रह दसवें स्थान में पड़ा है जो बली ग्रह है।

जन्मपत्री के साथ उनका नामकरण भी हुआ और चिरं-भालचन्द्र उस बालक का नाम रखा गया यही बालक हमारे परलोक का आश्रय और भारी सिद्धेश्वर है। दो वर्ष के पीछे गौड़वंश शिरोमणि पण्डित रामचन्द्र को माता मनोरमा की

पवित्र कोख से दूसरा भी बालक उत्पन्न हुआ जिस
साधुराम रखा गया।

भालचन्द्र ने अपने नौ जन्म दिन अर्थात् ६ वर्ष
का हर्ष बढ़ाते हुये व्यतीत किये। उनके मुख कमल
में दिव्य ईश्वरी भाव टपक रहा था अब वही समय
जब वे गुरुकुल निवास योग्य थे। पण्डित रामचन्द्र
स्वामी मेलाराम जी के बचन भूले नहीं थे तथापि उन्हों
नहीं चाहा कि ऐसा मनोहर बालक हमारे से सर्वदा
बिछुड़ कर कहीं बन और जंगलों में जाकर अपना
किन्तु पराई वस्तु कहाँ तक अपनी हो सकती है। अतः
वि० सं० १८२६ श्रावण शुदी १० के दिन जिनकी
उनके पास स्वयं ही ( रियासत पटियाला ) फुलैली ग्राम
भये। जंगल के रास्ते से हमारा चरित्र नायक बाल
मेलाराम जी के पास जाकर साष्टांग प्रणाम कर अति
नम्रता से प्रार्थना करने लगा कि हे गुरुवर्य इस
दीन बालक को कृपया अपनाइये। मुझको गुरुदीक्षा
योग शक्तियों का विकाश करिये। स्वामी मेलाराम
भावी बालक को जानते ही थे अतः वि० सं० १८३
शुक्ल ३ को उनको सत्यनाम का मन्त्रोपदेश देकर
पिलाया, उदासीन सम्प्रदाय में लाये। और कहने
सुपुत्र ! जंगल के रास्ते से वृक्षों का खण्डन करता हुआ
है अतएव तेरा नाम बनखण्डी रखते हैं। तूँ ऋद्धि
से पहले ही सम्पन्न पूर्ण विद्वान् है अतएव अब तेरे
विशेष विद्या पढ़ने की आवश्यकता नहीं है और न
समीप में रहने की आकांक्षा है। थोड़ा समय यहाँ
कुछ साधुओं को साथ लेकर तीर्थयात्रा के बहाने से आगे

योग शक्तियों का प्रभाव दिखाता हुआ पंचभौतिक जीवों
पकार में उद्यत हो जाना। श्री १००८ स्वामी बनखण्डी जी
ी मेलराम जी उदासीन के ज्येष्ठ (बड़े) शिष्य थे तथा
े चेले बाबा गुरुमुखदास जी, तीसरे चेले बाबा सन्तदास जी,
चेले बाबा अगमराय जी, पाँचवें चेले बाबा भोलाराम जी
सीन थे।

# तृतीय सर्ग

## तीर्थयात्रा

स्वामी बनखण्डी जी वि० सं० १८३६ तक अपने गुरुजी की साथ फिरते रहे तथा विद्या प योग भी सीखते रहे, फिर १ कार्तिक मास में एक उदासी (योगाभ्यासी) के संग में जिनके साथ ३।। वर्ष रहे। सं० १८४० में हरद्वार कुम्भ और वहाँ पर अपने गुरु जी से यहाँ उस योगीराज का संग छूट गुरु जी के साथ मिलकर कुरुक्षेत्र गये और उनसे योग रहे और उसी १८४१ के विक्रमी संवत् में गुरुजी की कुछ साधु साथ लेकर यात्रा को निकले।

वि० सं० १८४१ में श्री स्वामी मेलाराम जी के बड़े फुलैली ग्राम (रियासत पटियाला के पास) में पहले
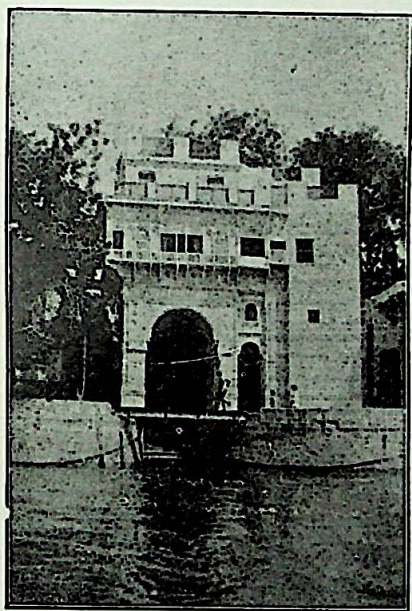
राज्य घाट की ढयोढी संगमरमरकी
पश्चिम दिशाका चित्र।
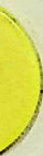
फिर जम्बू से घूमते फिरते रामवन से कष्टवाल भद्रवाल से पधरी ज्योति के दर्शन कर चम्बा में श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के ज्योतिर्मय की जगह देखकर जहाँ गुरु श्रीचन्द्र श्री देह सहित गुप्त हुये थे फिर मणिमहेश होकर फिर चम्बा आये। फिर नूरपुर से कांगड़ा बैजनाथ, सुकेतमण्डी, कुल्लू, वशिष्ठ, त्रिलोकनाथ से फिर कुल्लू बिजली महादेव, मनीकर्ण, मण्डी सुकेत से रवालसर, बिलासपुर, सपाटे, शिमला, सोलन, कसौली कालिका, अम्बाला होते वि० सं० १८४२ में रोपड़ आदि करते कपाल-मोचन जिसको गोपालमोचन भी कहते हैं फिर नाहन रियासत आये यहाँ से परशुराम की माता रेणुका की जगह कलसिया आदिक और भी पहाड़ों की रियासतें होते हुये हरद्वार आये।

हरद्वार से वि० सं० १८४२ में प्रयागराज के माघ मास के कुम्भ पर गये, वह मण्डली साथ में थी वहाँ से होकर बनारस, काश्मोर तथा बीच की यात्रा करते हुये अमरनाथ को सिधारे जहाँ से लौटकर फिर काश्मीर आये वहाँ मण्डली छोड़ दी।

वि० सं० १८४३ श्रावण शुक्ला १५ को सिद्ध स्थान से सिद्धों ने दर्शन कराने की इच्छा से दो साधु भेजे तब मंडली छोड़ कर एकाकी सिद्ध आश्रम को पधारे। जहाँ सिद्धों ने स्वामी जी का बड़ा ही आदर सत्कार किया और ८ साल अपने पास रखा। वहाँ से वि० सं० १८५२ में सिद्धों के साथ हरद्वार कुम्भ पर गये।

वहाँ गुरुजी के मण्डली के सहित दर्शन किये, पास रहे फिर वि० सं० १८५२ में हरद्वार कुम्भ कर ऋषिकेश होते आप पंजाब को लौटकर होशियारपुर की तराई घूमते फिर होशियारपुर आये। यहाँ से अचिन्तपूर्णी, नैनादेवी, आशापुरी घूमते ज्वालाजी,

काङ्गड़ा, बैजनाथ, मणिमेहश वि० सं० १८५३ में चम्बा, त्रिलोक नाथ, वशिष्ठादि होते वर्फ ज्योति का दर्शन कर चम्बा में जाड़ा गुजारा फिर वि० सं० १८५३ में चम्बा से वर्फ की ज्योति का दर्शन करते त्रिलोकनाथ से बशिष्ठ से त्रिवेणी नदी में झूले के रास्ते का पुल पार उतर कर मकावा, हरजोई, शृङ्गिऋषि का आश्रम, कालकादेवी, अगस्तमुनि का आश्रम, कोटनी पर चण्ड-देवी का दर्शन, भृगुमुनि का आश्रम, सिरगौड़ महादेव, बाराठ-कुराई, जबल रियासत होते कैलाश क्षीरगंगा की परिक्रमा करते कोटिभुजा में अष्टभुजादेवी, परशुराम कुण्ड, पीनस नदी, सिर-मौर रियासत, चौड़ चाँदनी महादेव, जौसार चकरौता, राजपुरा, देहरादून होते हरद्वार आये फिर जम्बू आये। जम्बू से अमरनाथ की यात्रा करते सिद्ध आश्रम गये, फिर वहाँ रहे। वहाँ वि० सं० १८५४ के श्रावण पूर्णमासी फिर दूसरी बार अमरनाथ को यात्रा को गये जहाँ से भाद्रों मास में लौट आये। पेशावर से झेलम नगर ( वितस्ता नदी के किनारे ) वजीराबाद आये और पंजाब की यात्रा करते लाहौर, अमृतसर होते घूमते हुये माघमास में प्रयाग के कुम्भ पर गये। वहाँ गुरुजी के शुभ दर्शन भी हुये वि० सं० १८५५-५६ में चित्रकूट और उसके आस पास रटन करते रहे।

वि० सं० १८५७ में गुरु नानक रीठा में आये वहाँ एक मास रहे और फिर काठगोदाम होते हुये हरद्वार से बद्रीनाथ की यात्रा की। वहाँ गुप्त पहाड़ों में अनेक सिद्ध लोगों से मिलते रहे। वि० सं० १८५७ में जोशीमठ में रहे, १८५८ में मानसरोवर गये। वि० सं० १८५९ का वर्ष भी वहाँ पहाड़ों में ही व्यतीत किया, फिर १८६० मेंहरद्वार से होते हुये श्रावण मास में अमृतसर आये यहाँ छः मास रहे तथा पंजाब की यात्रा की। फिर वि० सं० १८६१ में हरद्वार आये, जहाँ कनखल वाले बाबा मनोहरदास

जी उदासीन और अन्य साधु स्वामी जी से योगाभ्यास सीखते रहे, वहाँ तीन साल रहे और वि० सं० १८६४ का वैशाख वाला कुम्भ वहाँ करके अपने दो गुरुभाई और अभ्यागत बाबा गंगाराम को साथ लेकर मण्डली बाँध कर आसाम देश की ओर बढ़ते भये। मथुरा, मुरादाबाद नैमिषारण्य, सीतामढ़ी, अयोध्या, जनकपुर, काशी, गया, हरिहरक्षेत्र तथा वर्द्धवान होते हुये कलकत्ते से गंगासागर आये फिर कलकत्ते आये, फिर ढाका आकर आसाम गोहाटी में प्राप्त होते भये। अब हमारे पाठक यात्रा-प्रसंग में मन लगाते २ शायद थकित हो गये होंगे अतः विश्राम दिलाने के लिये स्वामी जी की सिद्धि का थोड़ा वर्णन कर देते हैं।

स्वामी जी अपनी मण्डली के सहित आसामदेश में विराजमान रह कर श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध का एक अध्याय और गीता व गुरु उदासीन कौमीवाणी मात्रा का पाठ नित्य करते थे। आषाढ़ शुक्ला पूर्णमासी भी आ गई। इसको ही गुरुपूजा कहा जाता है। जब सब महानुभाव खासकर विद्यार्थी वर्ग अपने २ गुरुजनों की देश रीति से पूजा करते हैं इस त्यौहार पर आमरस का नैवेद्य देने का बड़ा पुण्य फल कहा गया है। परन्तु कठिनता यह थी कि वायु आदि के दोष से उस ऋतु में वहाँ आम हुये ही नहीं थे। अतः उपलब्ध नहीं हो सकते थे।

हमारे स्वामी जी की मंडली के साधु इस वार्षिक महापर्व पूजा के अङ्ग भंग होने पर अत्यन्त चिन्तातुर हुये अब वे मन में भली प्रकार ठान स्वामी जी के आगे यह अपनी उत्कण्ठा प्रकट करते हुये कहने लगे कि हे गुरुदेव आपकी योग शक्तियों के आगे यह तुच्छ काम पूरा होना कोई बड़ी बात नहीं है, आप पूर्ण दयालु हैं हमारी धृष्टता क्षमा करें और पूजनार्थ आम कहीं से मँगा देवें। स्वामी जी ने एक गुटका* निकाल कर एक साधु को

*मंत्रों से पारे की गोली सिद्ध की जाती है उसको गुटका कहते हैं।

देकर कहा कि इसको मुख में रखने से तू एक क्षण भर में दिल्ली नगर में पहुँच जायगा। वहाँ कई बगीचे हैं उनमें से सें भी उम्दा आम ले आना।

इस योग गुटका का यह भी प्रभाव रहेगा जो तू सब देखेगा और तेरे को कोई नहीं देखेगा। सबके देखते २ वही वहाँ से गुप्त हो गया और दिल्ली में जा पहुँचा वहाँ से अभिलाषित आम लेकर थोड़ी ही देर में आसाम में आ निक आगामी दिन पर साधुओं ने स्वामी जी की पूजा की और आ का प्रसाद लेकर स्वामी जी की योगिक शक्तियों की प्रशंसा हुये ईश्वर का गुणानुवाद गाने लगे।

आसाम देश में स्वामी जी साल भर रहे अर्थात् वि० १८६५ का सारा वर्ष वहाँ बिताया। वि० सं० १८६६ में परशु कुण्ड, कामरू देश कामाक्षीदेवी, बालवाकुण्ड दर्शन करते मकसूदाबाद आये जहाँ से फिर भागलपुर आकर मधु भगवान् के दर्शन किये और फिर मुँगेर से होते हुये वि० १८६६ के प्रयागराज के कुम्भ पर आये जहाँ स्वामी वनख अपनी मण्डली के साथ थे। वहाँ ही उनके गुरुजी श्री मेलाराम जी भी अपनी मण्डली सहित पधारे हुये थे। वे शिष्य को ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न योग से सुयोग निष्ठा वाला कर बहुत ही प्रसन्न हुये। वि० सं० १८६७ में नैपाल की शि कर वहाँ से मुक्तिनाथ गये। वि० सं० १८६८ में फिर आसा होते हुये कटक आये। जहाँ से फिर जगन्नाथपुरी गये। ब्रह्मपुर होकर वि० सं० १८६९ में गोदावरी के कुम्भ पर जहाँ फिर सद्गुरु मेलाराम जी के मण्डली सहित दर्शन आप (श्री वनखण्डी जी) भी मण्डली समेत थे। वि० १८७० में उज्जैन कुम्भ पर आये। पहले ही की तरह यहाँ

अपने सद्गुरु मेलारामजी के दर्शन हुये और वहाँ से भोपाल और हैदराबाद दक्षिण से होते हुये मद्रास आये। यहाँ से पक्षीतीर्थ, शिवकांची, विष्णुकांची, बालाजी आये। ७१ का संवत् मद्रास प्रान्त में ही व्यतीत किया।

वि० सं० १८७२ में रामेश्वर से सिंहल द्वीप लंका (सीलोन) से रामेश्वर, मलवार, पद्मनाभ, जनार्दन और जंगवार गये। वि० सं० १८७३ में भारतवर्ष से बाहर अदन, गोआ बन्दर, मस्कत बन्दर, सात द्वीप को भी गये। वहाँ से फिर वि० सं० १८७४ में भारतवर्ष में आकर कलीकट, बंगलोर, मैसूर, निरंजनगुड कपिलगंगा का स्नान करके नीलगिरी होते किष्किन्धा, शोलापुर, पंढरपुर और पूना होते हुये बम्बई आये। फिर गोआ ड्यू बन्दर होते हुये वि० सं० १८७५ में बम्बई में आये। स्वामी जी जहाँ कहीं जाते थे वहाँ कुछ न कुछ उपकार अवश्य करते ही थे साथ ही कथा व्याख्यान द्वारा अपने हिन्दू धर्म का प्रचार भी करते थे। कई गृहस्थी लोग शरण में आकर सतोपदेश ग्रहण कर ऐहिक और पारलौकिक सुख सम्पादन करते थे। बम्बई के निवासियों ने बहुत ही चाहा कि स्वामी जी सदैव यहाँ रहें किन्तु स्वामी जी केवल वहाँ छः मास ही रहे और विशेष आग्रह होने पर अपने दूसरे नम्बर छोटे गुरुभाई बाबा गुरुमुखदास जो जिसको थोड़ा सा योगमार्ग का ज्ञान बता दिया था और थोड़ी बहुत सिद्धियाँ भी कमा सकता था उसको अपनी मन्डली समेत सदैव बम्बई में रहने को कहा और अपने साथ केवल दो साधु एक अपना तीसरे नम्बर का छोटा गुरुभाई बाबा सन्तदास और दूसरे अभ्यागत साधु गंगाराम को साथ लेकर सिन्ध देश को पावन करने का विचार करते भये - वि० सं० १८७६ में डाकोर जी होते हुये दाउद गोदरा की झाड़ी होते बीच की यात्रा करते आबू आये। वि० सं० १८७७ में जूनागढ़ में आये शिवरात्रि गिरनार में की।

फिर प्रभास क्षेत्र आदि होते वि० सं० १८७८ में सुदामापुरी होते दोनों द्वारिका (गोमती द्वारिका तथा वेट द्वारिका) में आये। जहाँ से माण्डवी, नारायण सरोवर, मगरभीम होते हुये सिन्ध देश में चरण रखे। कुछ दिन रह कर वहाँ के लोगों को उपदेश रूपी अमृतपान कराया।

# चतुर्थ सर्ग

## सिन्धु देशागमन

सं० १८७८ में सिन्धु देश में ठट्ठा में जगद्गुरु श्री ११०८ श्रीचन्द्र जी की धूनी पर नमस्कार किया फिर बेड़ी के रास्ते कोटड़ी में से होते हुये हैदराबाद सिन्धु से होकर कराची आये, छः मास रहे। कराची से फिर हैदराबाद सिन्धु में वि० सं० १८७८ कार्तिक में आये। दीवाली हैदराबाद में की। इस समय यहाँ हैदराबाद में हैजा की अतिप्रचण्ड व्याधि अपनी मस्ती में मस्त थी। नित्य कई मनुष्य इस पिशाचिनी के पंजे लगने से इस संसार की यात्रा समाप्त कर देते थे। यह दशा देखकर स्वामी जी का चित्त द्रवीभूत हो गया और ऐसे दुःखित पीड़ित जनों के दुःख छुड़ाने में यथाशक्ति प्रयत्न करने का निश्चय करते भये।

बास उसी में है विभुवर का है बस सच्चा साधु वही।
जिसने दुखियों को अपनाया बढ़कर उनकी बाँह गही।

आत्म स्थिति जानी उसने ही परहित जिसने व्यथा सही।
परहितार्थ जिसका वैभव है है उनसे ही धन्य मही।

स्वामी जी के ऐसे विचार करने से ही नगर के लोग उनके सत्कारार्थ मिलने आये और अपने दुःख निवृत्ति की प्रार्थना करने लगे। स्वामी जी तो पहले से ही तैयार थे तो उन्होंने गाय का दूध मन्त्रित करके विभूति के साथ उसको दिया और कहा कि इसमें गंगाजल मिला के सारे नगर में परिक्रमा रूप से सिंचन करो। ऐसा करने से ईश्वर की कृपा से यह आपदा हट जायगी। यथोक्त रीति से सब लोग एकत्र होकर बड़ी श्रद्धा और प्रेम से मुखी पंचों ने श्री महाराज का चरण धोय चरणामृत भी उसमें मिला के यथा निर्दिष्ट कार्य कर आये। दूसरे ही दिन कल्याण हो गया। बीमारी का नाम निशान न रहा और जो लोग नगर का परित्याग कर गये थे वे लौटकर आने लगे और नगर बसता गया। इस उपकार कार्य स्वामी जी का नाम सारे सिन्ध देश में, ख्यात हो गया। बहुत दूर दूर के लोग दर्शनार्थ आते रहे। स्वामी जी भी सबको हरिनाम उपदेश देकर उनके क्लेश काटते रहे। अब स्वामी जी को हैदराबाद में रहते एक वर्ष हो गया, अतः वहाँ से आगे बढ़ने का विचार करते भये। एक दिन हैदराबाद के सब नगर नायकों से स्वामी जी प्रार्थित होते भये कि आप यहाँ सदैव के लिये रहें, किन्तु स्वामी जी ने कहा कि अभ्यागत साधु गंगाराम और अपने छोटे गुरुभाई सन्तदास को यहाँ छोड़ देता हूँ और मेरे को शास्त्रों में मैनाक पर्वत के खण्ड कोटतीर्थ को प्रकट करना है क्योंकि वेदों तथा शास्त्रों में इस सिंधु तीर्थ की बड़ी महिमा वर्णित है सिंधु गंगा जिसमें सात गंगायें आकर मिलती हैं उसका माहात्म्य भी शास्त्रों में कई जगह आया है। यवनों ( मुसलमानों ) के राज्य से पहले भी यहाँ पर कुम्भ का मेला लगता था अतएव मेरी प्रबल इच्छा है कि अपनी

शेष आयु ऐसे पुण्य स्थान पर बिताऊँ। ऐसे बचन सुनकर कोई आग्रह नहीं कर सका और स्वामी जी भी सबको आशीर्वाद देकर विदा होते भये। साधु गंगाराम जी स्वामी जी के अत्यन्त प्रेमी थे उनकी इच्छा वियुक्त होने पर न थी स्वामी जी नित्य प्रातःकाल दर्शन देने का वर्दान देकर तथा अपनी पादुका स्थापित कर उनकी सेवा का भार उनके ऊपर रख कर वि० सं० १८७६ दीवाली कर कार्तिक शुदी १ को हैदराबाद से चले। अकेले रास्ते की यात्रा करते हुये खैरपुर में आये। खैरपुर में एक पक्ष रहे और फिर रोहड़ी में आये जो सिंधु देश के पूर्व भाग में एक प्राचीन नगरी सिंधु गंगा के तीर पर आज तक भी स्थित है।

यहाँ आने से स्वामी जी से प्रथम परिचित होने का सौभाग्य रोहड़ी निवासी सेठ घूमनमल और सेठ रीझूमल को मिला। यह दोनों वड़े ही प्रेमी सज्जन थे और स्वामी जी के नित्य दर्शन से अपने को कृतकृत्य मानने लगे और उनसे गुरुदीक्षा लेकर उनके सेवक भी बने। तुलसीराम नामक एक रोहड़ी निवासी प्रेमी स्वामी जी की निरन्तर सेवा में रहता था। हम आगे चलकर देखेंगे कि यह महात्मा स्वामी जी का ज्येष्ठ शिष्य होगा। वि० सं० १८७६ पौष वदी २ स्वामी जी रोहड़ी में आये चार मास रहे। स्वामी जी सेठ घूमनमल उसका भाई सेठ रीझूमल के घर में रहे हुये थे जिस समय भक्खर किले की राजधानी में अच्छी आबादी थी। श्री स्वामी वनखण्डी जी महाराज देखने की इच्छा कर वेड़ी पर चढ़ कर भक्खर गये। उस समय दलीपसिंह जी वर्तमान नाम स्वामी हरिनारायणदास जी किले के मुख्य मुख्तियार कोतवाल थे। स्वामी बनखण्डी जी तीन दिन राजधानी के बगीचे में रहे। कोतवाल दलीपसिंह जी ने (स्वामी हरिनारायणदास जी ने) अच्छी सेवा की। स्वामी वनखण्डी जी महाराज ने उनसे पूछा "आप कौन हो ? क्या आप वजीर हो ?"

उत्तर में कहा "मैं किले का कोतवाल मुख्य मुख्तियार क्षत्रिय हूँ।" स्वामी बनखण्डी जी महाराज ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा कि आप किले के वजीर होवेंगे। तीन दिन तक स्वामी जी रोहड़ी में ऊपर वाले गृहस्थी के पास आके रहे। स्वामी बनखण्डी जी से मिलने के बाद चौदहवें दिन याने वि० सं० १८ वैशाख वदी २ दिन मीर पादशाह की तरफ से दलीपसिंह को वजीरी मिली। यही दलीपसिंह जी का नाम आगे चल याने वि० सं० १६०० में स्वामी बनखण्डी जी महाराज के चेले होने करके स्वामी हरिनारायणदास जी नाम रखा गया।

# पंचम सर्ग

## श्री साधुबेलातीर्थ में स्थिति

थोड़े दिनों के पश्चात् सेठ फिरन्दमल के पुत्र बड़ा सेठ घुमनमल, मँझला सेठ रीझूमल उर्फ राँझामल छोटा भाई हासानन्द थे। हासानन्द के पुत्र दयामल का चूड़ा-कर्म संस्कार (झंड) होने वाला था। स्वामी जी ने सेठों से कहा कि यह शुभ कार्य श्री सिंधु गंगा के मध्यवर्ती मेरुजाति पहाड़ कोटितीर्थ नाम वाला है उसमें कुशावर्तघाट और चक्रतीर्थ भी हमने नाम रखना है, सिन्धु सरस्वती गंगा में जो टापू है, वहाँ करो। सेठों ने स्वामी जी का कहना बड़े हर्ष से स्वीकार किया और स्वामी जी के साथ सब मिलकर नाव में बैठकर इस स्थान पर आये जिसका वर्त्तमान नाम श्री साधुबेलातीर्थ है। और लोग तो अपना सब कार्य करके चले गये और स्वामी बनखण्डी जी महाराज यहाँ ही अपने प्रेमी सेवक तुलसीराम के साथ विराजमान होते भये यह शुभ दिन वैशाख कृष्ण

द्वितीया का था जबकि स्वामी जी वि० सं० १८८० में यहाँ
और आसन लगा कर विराजित होते भये। यहाँ तीन वट
वृक्षों को अपने हाथ से लगा कर उनके नाम ब्रह्मा, विष्णु
रखे। जिनमें गद्दी साहब के दाहिने का नाम ब्रह्मा बायें
विष्णु तथा सम्मुख वाले का नाम महादेव रख नीचे
उन्होंने श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव की आराधनार्थ
की।

जिन्होंने साक्षात् प्रकट होकर उनको दर्शन दिया और
वर्दान देकर आज्ञा करते भये कि हे वत्स, इस तीर्थ
अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णा स्थापित करो, इसलिये उसकी
तेरे लिये आवश्यकीय है, उसको प्रसन्न करो, यों कह
अन्तर्धान हो गये। अब स्वामी जी अन्नपूर्णा देवी को
में लगे। दर्शन होने में क्या विलम्ब था। वे समाहि
तो पहले से ही थे। नौ दिनों के अनुष्ठान समाप्त होने प
भी वरंब्रूहि वरब्रूहि कहती हुई प्रकट होती भई। स्वाम जी
खोल के देवी की स्तुति की और अपना अभिप्राय प्रक
हुये कहा कि हे जगज्जननी मेरी इच्छा है कि इस ती
पर अन्न का अक्षयदान होता रहे। साधु महात्मा,
अतिथि, यात्री आदिक सब लोग यहाँ भोजन कर सदै
होते रहें और अपनी मनोभिलाषाएँ पूर्ण करते हुये
गुणानुवाद गाते रहें। देवी अन्नपूर्णा ने एक हरड का कर
देकर स्वामी जी को कहा हे योगाचार्य जब तक लोगों की
भक्ति बनी रहेगी तब तक इस करमण्डल के प्रभाव से
कभी भी क्षति न होगी। जितने भी लोग यहाँ आवें
खा-पीकर तृप्त हो जायँगे। ऐसे वचन उच्चारण कर
जगदम्बा देवी अन्नपूर्णा ने गुप्त रूप से श्री साधुबेला
निवास किया।
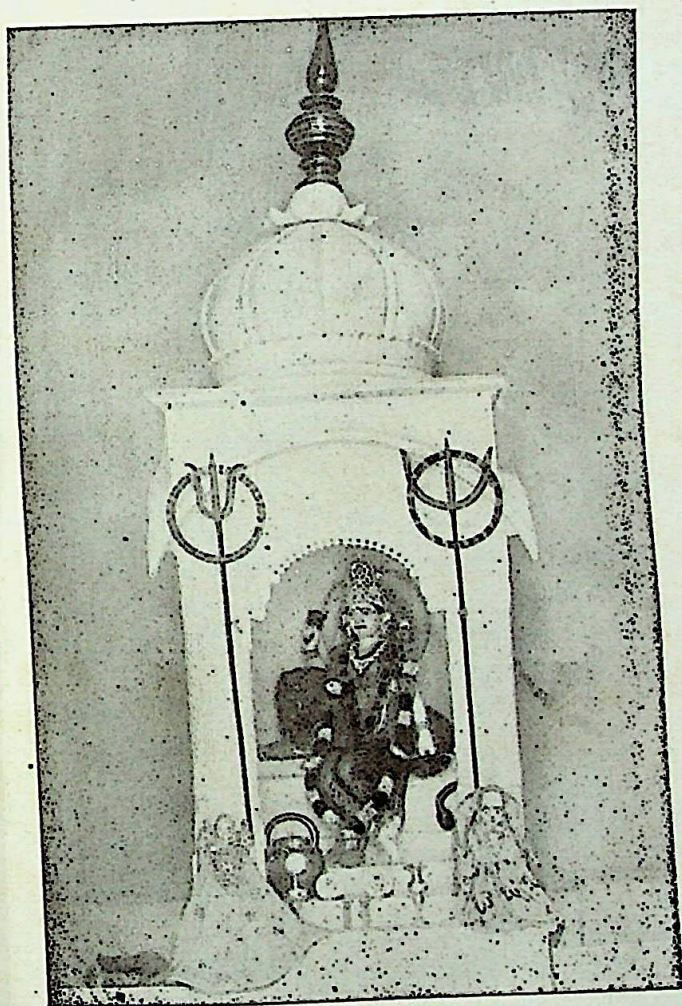
कोठार के भीतर मूर्ति श्री अन्नपूर्णाजी

श्री १००८ स्वामी जी ने उसी ही दिन करमण्डल की पूजा प्रतिष्ठापन कर कुमारी भोजन कराया। खक्खर, भक्खर, रोहड़ी आदि समीपवर्ती नगरों की कन्यायें यहाँ आकर एकत्र हुईं। सबको भोजन कराया गया। यह प्रणाली कुमारी भोजन की आज तक चली आती है। प्रति वर्ष दो बार नवरात्रों की अष्टमी पर दुर्गा-देवी के उपलक्ष्य में बड़ा भारी कुमारी भोजन कराया जाता है।

तत्पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा से गणेश, हनुमान, सत्यनारायण, पिपलेश्वर, सिद्धेश्वर, बटेश्वर आदि देवताओं की भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापना की।

इस तीर्थ स्थान का साधुवेला (श्री गुरु बनखण्डी जी महाराज साधुओं को बहुत रखते थे इसकर इसका आपने) नाम रख दिया और घाटों की रचना कराके उनके निम्नलिखित नाम रखते भये:—(१) राजघाट (२) वरुणघाट (३) गऊघाट (४) हरद्वारघाट (५) गणेशघाट (६) देवीघाट (७) कृष्णघाट (८) रामघाट (९) कुशावर्तघाट (१०) सरस्वतीघाट (११) सूर्यघाट (१२) विष्णुघाट (१३) शिवघाट (१४) ब्रह्माघाट (१५) दुःख-भंजनीघाट (१६) त्रिवेणीघाट (१७) यमुनाघाट (१८) भैरवघाट (१९) यमघाट (२०) कुबेरघाट।

तत्पश्चात् बनखण्डी मन्दिर की स्थापना की। इन सब मन्दिरों के दर्शन करने से तथा घाटों पर स्नान करने से अन्य तीर्थों से अधिक फल कहा गया है। स्वामी जी को अब यहाँ आये एक वर्ष हो गया था।

वि० सं० १८८१ में ज्येष्ठ वदी १२ को गोदावरी कुम्भ पर गये। साथ में महन्त श्यामदास खटवाली धर्मशाला शिकारपुर वाले भी थे। वि० सम्वत् १८८२ उज्जैन कुम्भ करके वि० सं० १८८३ ज्येष्ठ वदी ८ को श्री साधुवेलातीर्थ में लौट आये। दोनों कुम्भों पर अपने गुरुजी का दर्शन किया तथा वि० सं० १८८६

की वैशाखी करके दूसरे दिन श्री साधूबेला तीर्थ से चले।
मास में अमरनाथ गये। इसी वर्ष पौष वदी १२ दिन
बेलातीर्थ में लौट आये। साथ में गुरुमुखदास जी
वम्बई वाले थे। फिर वि० सं० १८८७ में सात साधु
लेकर वैशाखी स्नान कर यहाँ से दूसरे दिन चले, अमर
साथ में अपना चेला विष्णुदास और बाबा गुरुमुखदा
वाला और महन्त श्यामदास ( खटवाली धर्मशाला
वाले ) गये थे। जगन्नाथ और गंगासागर का मेला क
मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि तीर्थों से होते हुये
१८८८ में हरद्वार का कुम्भ किया, जहाँ अपने गुरु मे
का मण्डली सहित दर्शन किया। फिर यमनोत्री, गंगो
केदार, त्रियुगी नारायण, केदार, बद्रीनारायण होकर हर
फिर इसी साल वि० सं० १८८८ कार्तिक वदी १३ को
साधुबेलातीर्थ में आये। वि० सं० १८९० में श्रावण
को श्री साधुबेलातीर्थ से प्रयागराज कुम्भ पर गये,
विष्णुदास थे। फिर चित्रकूट अमर कण्टक करके
१८९१ कार्तिक वदी १३ को लौटकर श्री साधुबेलातीर्थ
वि० सं० १८९९ में श्री स्वामी जी दस बारह साधु लेकर
६ को हरद्वार कुम्भ के लिये रवाना हो गये। साथ बाबा
जी तथा खैरपुर वाले महन्त गुरुपतदास उदासीन जी भी
से चैत्र वदी २ को वृन्दावन में गये थे वहाँ से चैत्र वदी ८
आये वि० सं० १९०० का हरद्वार कुम्भ किया। छावनी
रहे थे। परमहंस अवस्था को धारण किया। अपने गु
मंडली सहित दर्शन किये। हरद्वार से यमनोत्री, गंगोत्री, केदा
नारायण की यात्रा कर के फिर हरद्वार आये। वहाँ से गु
वाला कर्तारपुर होते उसी साल भाद्रों शदी १५ को श्री
तीर्थ में आये फिर वि० सं० १९०२ में श्रावण वदी १ को श्री

गणेशघाट के पास मूर्ति श्री गणेशजी

जी प्रयागराज कुम्भ को चले। प्रयागराज कुम्भ करके गुरु मेला-राम जी से आज्ञा लेकर पुरी, रामेश्वर, दोनों द्वारिका और रास्ते के तीर्थ अग्निबोट द्वारा करते हुये कराची से अग्निबोट द्वारा वि० सं० १६०३ चैत्र वदी १५ को श्री साधुबेलातीर्थ में आ गये। इस यात्रा में स्वामी हरिनारायणदास जी, बाबा विष्णु दास जी दोनों अपने शिष्य साथ थे और महन्त गुरुपतदास जी खैरपुर वाले भी साथ थे।

श्री साधुबेलातीर्थ से आषाढ़ वदी १ वि० सं० १६०८ को प्रयागराज की अर्द्धकुम्भी वास्ते स्वामी जी मुल्तान, बावे नानक के देहरे होते गये। लौटते हरद्वार आये वैशाखी का स्नान किया वहाँ से कुरुक्षेत्र में वि० सं० १६०६ आषाढ़ शुदी १५ गुरुवार काचन्द्र ग्रहण कर मुल्तान से होते कार्तिक वदी ११ को श्री साधुबेला तीर्थ में आ गये। साथ में हरिनारायण दास जी और विष्णुदास जी दोनों चेले और८ भी साधु थे तथा महन्त श्याम-दास जी खटवाली धर्मशाला शिकारपुर वाले भी साथ थे। इस यात्रा में मुल्तान तक आते जाते अग्निबोट जहाज पर आये गये थे।

नोट—हरद्वार से स्वामी हरिनारायणदास जी अपने साथ के तीन साधु (जो श्री साधुबेलातीर्थ से गये थे बाबा मंगलदास, बाबा गुरुमुखदास, बाबा ज्ञानदास ये तीनों चेले स्वामी हरि-नारायणदास जी के थे) साथ लै पूज्य श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी साहब जी से आज्ञा लै यमनोत्री, गंगोत्री, बूढ़ाकेदार, केदारनाथ जी होते बद्रीनाथ जी को गये। लौटते नैनीताल, काठगोदाम, पीलीभीत, मुरादाबाद होते हरद्वार आय स्नान कर आषाढ़ शुदी १४ को कुरुक्षेत्र में आय श्री स्वामी जी को मिल गये फिर साथ ही रहे।

श्री साधुबेलातीर्थ में जब श्री स्वामी जी को २० वर्ष हो गये और बीच में वे अपनी सिद्धियों का विकास कर संसाराग्नि प्रदग्ध

चित्त वालों को आत्मिक उन्नति के साधन बता कर उन्हें शान्त चित्त करते भये जिससे आपका सुयश चौतर्फा खूब फैल रहा था।

वि० सं० १६०० (तदनुसार १८४३ ई०) में अंग्रेजों के राज्य की विजय पताका फहरा रही थी और अब मीरों का राज्य पर कोई अधिकार नहीं था। पहला राज कर्मचारी जो यहाँ आया उनका नाम कैप्टेन पैङ्क वेल्स (Captain Pank Wales) था। कलक्टर के भी अधिकार इन्हें थे। वे जब सक्खर नगर में नियत होकर आये और नदी के मध्य में श्री साधुबेलातीर्थ इन्हें दृष्टिगोचर हुआ तब मन में विचार करने लगा यदि इस स्थल पर मेरा बँगला बन जावे तो अच्छा हवादार और सुन्दर रहेगा। दूसरे ही दिन कारीगर मजदूर लोग साथ में लेकर वहाँ गया और इमारत बनाने की उनको आज्ञा देता भया। दिन को काम करके वे लोग रात्रि को भी वहाँ ही रह गये और दूसरे दिन को उठ करके देखा कि दीवारें आदि जो कुछ बनाई गई थीं वे गिरी पड़ी थीं पैङ्क साहब को जब इस बात का पता लगा तब उसने कहा कि यह साधु मेरी इच्छा के प्रतिकूल है और यह हिन्दू कारीगर लोग भी उसी से मिले हुये हैं। अतएव दूसरे दिन मुसल्मान कारीगरों को काम पर भेजा, किन्तु तीसरे दिन पर भी वही दशा देखी गई जो गत दिवस पर हुई थी। फिर पैंक साहब ने सोचा कि यह हिन्दू अथवा मुसलमान इस साधु से मिले हुये हैं और मेरा रहना यहाँ पसन्द नहीं करते हैं इसलिये उस दिन काम करा के रात्रि को गोरे सिपाही पहरे के लिये नियत कर दिये किन्तु उनके रहते हुये तो और भी अधिक आश्चर्यजनक घटना हुई जो निर्मित दीवारें आधी तो गिर गई किन्तु ईंटें, चूना आदि भी वहाँ से उड़ गया। जगह ऐसी बन गई मानों किसी ने झाड़ू लगा दिया हो पैंक साहब के तो छक्के ही छूट गये अपने मनोरथ की असिद्धि देखकर इस विचार पर पहुँचा कि यह साधु कोई जादू

गर दीखता है अतः जब तक यह यहाँ से नहीं जायगा तब तक कार्य सिद्ध नहीं होगा। अपने मन में ऐसा ठानकर उसने स्वामी जी को वहाँ से चले जाने के लिये भी कह दिया। स्वामी जी तो उसके कहनेमात्र से चम्पत हो गये। महात्माओं को सतानेवाला अवश्य ही अनिष्ट को प्राप्त होता है इसमें किसी को भी संशय नहीं होना चाहिये और ऐसे ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न महात्माओं के साथ हाथ फसाने वाले की तो बात ही क्या करनी चाहिये। रात्रि को जब पैंक साहब बाल बच्चों सहित सक्खर शहर में अपने घर में सो गया तब आधी रात को स्त्री समेत उसको ऐसी पीड़ा जान पड़ी जिससे वे दोनों अत्यन्त तड़प रहे थे यह पीड़ा बढ़ती ही गई। क्या करें रात्रि के समय में भृत्यवर्ग सब निद्रादेवी की गोद में चले गये थे। कईयों को जगाया भी किन्तु वैद्य उस समय कहाँ से आता। बहुत ही विचारे तड़पते २ इस आकस्मिक शूल का निदान विचारने लगे कि किस कारण से इस दुःख ने हम दोनों को आक्रान्त किया है कोई ऐसा अपथ्य भी सेवन नहीं किया है तो भी यह व्यथा बढ़ती ही क्यों जाती है। इस प्रकार जब वे तड़पते २ हार गये तब स्त्री को स्मरण आया—निःसन्देह यह व्यथा उसी साधु की करामात है जिसके डेरे पर साहब अपना बंगला बनवा रहे थे उसी महात्मा को दुःखाने का ही यह परिणाम है। पैंक साहब को भी यह बात जी से लगी और पश्चाताप करके कहने लगा कि प्रातः-काल होते ही उस महात्मा को ढूँढ के क्षमा माँगूँगा और उस स्थान पर कभी कोई छेड़छाड़ भी नहीं करूँगा। ऐसी बातें करते करते उनकी पीड़ा कम होती गई और प्रातःकाल ने भी पदा-रोपण कर लिया। साहब बहादुर अपने अनुयायियों को साथ में लेकर हमारे स्वामी जी की खोज में निकल पड़ा। सायंकाल होते तक स्वामी जी को टटोलता रहा किन्तु स्वामी जी के मिलने में

अब किंचित देरी थी। निराश होकर मिस्टर पैंक घर को लौट आया। वहाँ फिर उसको एक उक्ति सूझी, सब नगर नायकों को इसने बुला लिया और आर्डर ( आज्ञा ) देता भया कि साधुबेला-वाले महात्मा को अगर कल शाम तक नहीं ढूँढ लाओगे तो सब को कड़ा दंड दिया जायगा। ऐसे कह कर रात्रि की सब दशा उनको विस्तार से वर्णन कर सुनाई। लोगों ने उसी समय से ही श्री स्वामी जी का अन्वेषण करना प्रारंभ कर दिया। जब उनके भाग्य में भी निराशा के चिन्ह आने लगे तब वे सब एक स्थान पर एकत्र होकर ईश्वर के गुणानुवाद और स्वामी जी का कीर्तन और याद कर ध्यान करने लगे और रश्मिमाली सूर्य को अस्ताचल का वास लेने में अभी केवल दो घंटे का ही विलम्ब था जो स्वामी जी अपने भक्तों को राजदंड से बचाने के लिये वहाँ स्वयं ही प्रकट हो गये। सब के मुख से स्वतः ही जयजय का शब्द निकलने लगा तथा कैप्टेन साहब को सूचित होते ही सहसा स्वामी जी के पास आय चरणों पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। स्वामी जी ने उसको पूर्णतया पश्चाताप किया हुआ देख उसके अपराध क्षमा कर दिये। तत्पश्चात् पैंक साहब ने स्वामी जी को स्थान का परवाना भी लिख दिया तथा सब मिल कर स्वामी जी को बाजों गाजों से श्री साधुबेलातीर्थ पर ले गये। ऐसे अद्भुत चरित्रों से स्वामी जी का यश अति विस्तृत हो गया। कई राजे महाराजे देश देशान्तरों से आकर स्वामी जी के दर्शन प्राप्त कर अपने मलिन हृदयों को शुद्ध करते थे।

आश्विन वदी ८ वि० सं० १९०० को श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज श्री साधुबेलातीर्थ से अग्निबोट द्वारा हैदराबाद सिन्धु गंगाराम नागे के बारे के भण्डारे पर गये। गंगाराम नागे का देवलोक आश्विन वदी ५ को हुआ था। आश्विन वदी ६ को अग्निसंस्कार किया गया। श्री स्वामी जी हैदराबाद सिन्धु आश्विन

वदी १० को पहुँचे थे। आश्विन शुदी २ को वारे का भंडारा था इस वास्ते लोग मना कर ले गये थे। कार्तिक वदी २ को वहाँ से चलकर कोटली, माभन्दा, लाड़काणा होते श्री साधुबेलातीर्थ में कार्तिक वदी ८ को सन्ध्या ६ बजे आये थे।

वि० सं० १६०० कार्तिक शुदी ८ को श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज अमरापति नामक वेदी वंशी के भण्डारे पर शिकारपुर गये। साथ में और भी कई साधु थे। सब मघर सुदी ८ को श्री साधुबेल.तीर्थ में लौट आये।

वि० सं० १६०० माघ शुदी ८ धन्नासिंह कबीर पंथी के मकान बनने के बाद मकान के मुहूर्त पर शिकारपुर गये। इसी साल चैत्र वदी ३ को श्री साधुबेलातीर्थ में लौट आये थे। मकान के मुहूर्त के साथ उसने अपना भंडारा भी किया था।

सिन्धु देश के मीर जो इस समय अँग्रजों से पराजित हो चुके थे, उनका एक मुख्य वजीर दलपतसिंह जो श्री स्वामी जी के दर्शन करने रोज आता था वह अपने गृह परिजन का त्याग कर स्वामी जी की शरण में आया और उनसे दीक्षा लेकर साधु होने की कांक्षा करता भया।

वि० सं० १६०० की शरद् पूर्णिमा को वह उदासीन सम्प्रदाय में लाया गया और स्वामी जी ने अपना चेला बनाय हरिनारायणदास जी उनका नाम रखा। निरन्तर स्वामी जी की सेवा में तत्पर रहने से हरिनारायणदास जी श्री स्वामी जी के पूर्ण कृपापात्र बन गये। अतएव उसी साल में ही कार्तिक वदी १० को स्वामी जी ने उनको कोठार की गद्दी पर बिठाया। इससे पहले वि० सं० १८८० वैशाख वदी २ से लेकर वि० सं० १६०० कार्तिक वदी १० तक कोठारी का काम बाबा विष्णुदास जी करते थे जिनको वि० सं० १८८० वैशाख सुदी २ चन्द्ररात्रि दिन को स्वामी जी ने अपना

चेला बनाय इसी दिन कोठार को गद्दी पर बिठाया था। यह बाबा विष्णुदास जी हमारे स्वामी जी के ज्येष्ठ शिष्य प्रिय पाठकों के पूर्व परिचित हैं। आप तुलसीराम नामक प्रेमी सेवक को भूले न होंगे। बस, यही तो बाबा विष्णुदास के रूप में अब पलट गये थे। आपका जन्म राहड़ी में वैश्य जाति भाटिया के घर का था। आप वि० स० १८८१ में गोदावरी कुम्भ, वि० सं० १८८२ में उज्जैन कुम्भ, वि० सं० १८८६ में काश्मीर अमरनाथ फिर दूसरी बार वि० स० १८८७ में काश्मीर अमरनाथ करके और चारधाम की यात्रा कर वि० स० १८६१ में श्री साधुबेला तीर्थ में लौट आये। वि० सं० १८८८ में हरद्वार कुम्भ, जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका आदि यात्रा करके वि० सं० १८९० में प्रयागराज कुम्भ कर ६१ संवत् में यमनोत्री, गंगोत्री, दोनों केदार, बद्रीनारायण यात्रा गये। वि० सं० १६०० में हरद्वार कुम्भ कर यमनोत्री गंगोत्री, दोनों केदार बद्रीनारायण यात्रा को गये। वि० सं० १६०२ में फुलैली, कुरुक्षेत्र होते प्रयागराज कुम्भ और तीन धाम की यात्रा करी। वि० सं० १६०८ प्रयागराज अर्द्धकुम्भी सब यात्रा श्री स्वामी बनखण्डी जी के साथ करी थी और ७५ वर्ष की पूर्ण आयु में जब आप वि० सं० १६१५ आषाढ़ बदी २ प्रातःकाल ५ बजे देवलोक हुये तब तक श्री साधुबेलातीर्थ ही में रहे।

एक समय में बाबा हरिनारायणदास जी को हरद्वार में जाकर गंगा जी के दर्शन करने की इच्छा हुई तब श्री स्वामी बनखण्डी जी महाराज ने उनका श्री साधुबेलातीर्थ में ही हरद्वार घाट पर श्री गंगा जी के दर्शन करा दिये। वि० सं० १६१२ के कुम्भ समय याने वैशाखी के दिन आपने यह कुम्भ श्री साधुबेलातीर्थ में ही किया। आपने श्री स्वामी बनखंडी महाराज की योगशक्ति से निकाली हुई गंगा का दर्शन किया सभी स्वामी हरिनारायणदासजी की प्रेरणा का प्रताप समझते

थे। इसी स्वामी बनखण्डी जी महाराज की छावनी में आप दोनों रहे थे।

कई विरक्त महात्मा लोग श्री साधुबेलातीर्थ में स्वामी जी के दर्शन सत्संग भोजन आदि की निश्चिन्तता और ईश्वरपरायणता की सुविधा देख चिरकाल तक यहाँ निवास करते रहे। इसी प्रकार संसारानल से संतप्त होकर कई गृहस्थी भी स्वामी जी से दीक्षा लेकर उनके आज्ञाकारी अनुचर बन कर अपना ऐहिक पारलौकिक साधन सिद्ध करने को साधु बन उदासीन सम्प्रदाय को सुशोभित करने लगे। उपरोक्त **(१) बाबा विष्णुदासजी** और **(२) स्वामी हरिनारायणदास जी** के अतिरिक्त

**(३) बाबा रूखड़दास जी :**—वि० सं० १८८३ कार्तिक वदी १४ दीवाली के दिन शिष्य बने। आप वि० सं० १९१५ तक श्री साधुबेलातीर्थ में रहे। इसी साल स्वामी बनखण्डी जी महाराज की आज्ञा लेकर यात्रा करने चले गये। जैसा पुष्कर के पंडे की वही में लिखा है।

**(४) बाबा प्रेमदास जी :**—आपका जन्म पंजाब भटिण्डा खास का था। वि० सं० १९०१ में वैशाखी के दिन स्वामी जी के चेले हुये और १९०२ में प्रयागराज के कुम्भ पर अपने सद्गुरु जी के साथ सक्खर से गये और वि० सं० १९३० में वैशाखी के दिन लखनऊ परगने में ४० वर्ष की आयु में आपका देवलोक हुआ।

**( ५ ) बाबा ज्ञानदास जी :**—यह महात्मा चाचरा रियासत के मिट्ठन कोट नामक नगर में जन्मित हुये थे और वि० सं० १९०४ के पौष शुक्ला २ चन्द्र राति के दिन को स्वामी जी

के शिष्य हुये। वि० सं० १६१६ में ७० वर्ष की आयु मेंदेवलोक हो गये।

**( ६ ) बाबा सन्तशरण जी :**—इनका जन्म खानपुर रियासत बहावलपुर के पास नवाकोट का था। वि० सं० १६०५ के पौष शुक्ला २ चन्द्र रात्रि के दिन को स्वामी जी के शिष्य हुये। आपका जन्म नाम लोकमल था। वि० सं० १६१५ भादों वदी २ दिन आप श्री साधुबेलातीर्थ में ७० वर्ष की पूर्ण आयु में देवलोक हो गये।

**( ७ ) बाबा ईश्वरदास जी :**—आपका जन्म कपूरथला रियासत का था वहाँ एक सरदार के आप सुपुत्र थे। वि० सं० १६०६ के माघ की संक्रान्ति पर स्वामी जी के शिष्य हुये। वि० सं० १६.४ पौष वदी १० रविवार संध्या रात्रि को दो बजे आपने ८५ वर्ष की अवस्था में इस शरीर रूपी पुराना चोला त्याग दिया। आपको सब लोग चाचाजी कह कर पुकारते थे।

**( ८ ) स्वामी हरिप्रास जी :**—यह पूर्ण विद्वान् थे जिनको स्वप्न में भी प्रकृति तथा प्रकृति जन्य पदार्थों का लेशमात्र न था। ।केवलमात्र ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में आसक्त चित्त श्री स्वामी जी के शिष्य थे वि० सं० १६१० में तीर्थ में आये। वि० सं० १६१० के कार्तिक शुदी १ अन्नकूट के दिन स्वामी जी के शिष्य बन कर उदासीन सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुये। आपका जन्म हैदराबाद (सिंधु) के एक आमिल वैश्य के गृह का था और जन्म नाम नारायण कहते थे। शेष चरित्र आगे वर्णन किया जायगा जब स्वामी जी के पीछे गद्दी पर बैठेंगे। साधु बन के आप वि० सं० १६१२ की बैशाखी का मेला कर काशी विद्याध्ययन करने गये।

**( ९ ) बाबा अमरदास जी :**—इनका जन्म दिल्ली के पास का था। वि० सं० १९१३ के माघ संक्रांति को स्वामी जी के शिष्य हुये। वि० सं० १९२७ आषाढ़ वदी १३ को देवलोक हो गये। पूर्ण आयु ५० वर्ष की थी।

**( १० ) बाबा हरिकृष्णदासजी :**—आपका जन्म सारस्वत ब्राह्मण कुल में हुआ था और वि० सं० १९१३ के माघ की वसन्तपञ्चमी को स्वामी जी के शिष्य बने। वि० सं० १९२८ श्रावण शुदी ४ को श्री साधुबेलातीर्थ में देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ३४ वर्ष की थी।

**( ११ ) बाबा सन्तोषदास जी :**—आपका जन्म सिंध के लखी ग्राम का था। वि० सं० १९१४ के पौष शुक्ला २ चन्द्र के दिन को स्वामी जी के शिष्य हुये और ६० वर्ष की आयु में वि० सं० १९३० फाल्गुन शुदी १५ होली को श्री साधुबेलातीर्थ में सन्ध्या ६ बजे देवलोक हुये।

**( १२ ) बाबा तुलसीदास जी :**—आपका जन्म वैश्य जाति के सिन्ध देश के टंडेजाम नगर का था। वि० सं० १९१० चैत्र वदी २ आप श्री साधुबेलातीर्थ में आये। वि० सं० १९१६ के माघ संक्रांति को स्वामी जी के शिष्य हुये। आपका देहावसान ७० वर्ष की आयु में वि० सं० १९६४ में श्रावण वदी २ दिन के प्रातः २ बजे काशीधाम में मणिकर्णिका घाट पर हुआ था।

**( १३ ) बाबा रामदास जी :**—आपका जन्म हरिपुर हजारा से दो कोस दूरी पर सिरहान ग्राम में सारस्वत ब्राह्मण के कुल में हुआ था। वि० सं० १९१६ की माघी संक्रांति दिन स्वामी जी के शिष्य बने। ४२ वर्ष की आयु में शरीरपात शिकारपुर ( सिन्धु ) में वि० सं० १९२२ आश्विन वदी १४ को हुआ था।

(१४) बाबा सन्तदास जी :—इनका पूर्व नाम कन्हैयालाल था जो सारस्वत ब्राह्मण थे, जन्म होशियारपुर का था परन्तु जिला जालन्धर (पञ्जाब) लोगोंवाल में पले थे। वि० सं० १६१० भाद्रों शुदी २ श्री साधुबेलातीर्थ में आये किन्तु शिष्य वि० सं० १६१७ के आषाढ़ शुदी १५ को हुये। ४२ वर्ष की आयु में वि० सं० १६३२ भादों शुदी १४ दशम द्वार में प्राण चढ़ाकर संध्या के ८ बजे आपने शरीर त्याग किया। यह थोड़े समय गद्दी पर बैठे थे जो हम आगे चल कर वर्णन करेंगे।

(१५) बाबा मोहनदास जी :—आपका जन्म सिन्ध हैदराबाद वैश्य जाति का था। वि० सं० १६१६ आषाढ़ शुदी में यहाँ श्री साधुबेलातीर्थ में आये। वि० सं० १६१८ माघ संक्रान्ति को श्री स्वामी जी के शिष्य हुये कुछ काल स्वामी हरिनारायण दास जी की अख्तियारी से वि० सं० १६२७ आश्विन शुदी २ चन्द्र रात्रि संध्या ६ बजे गद्दी पर भी बैठे। वि० सं० १६२५ आश्विन वदी १४ को प्रातःकाल ५ वजे ७५ वर्ष की अवस्था में देवलोक पधारे।

(१६) बाबा प्रतापदास जी:—आपका जन्म वि० सं० १८६३ में भटिण्डा नगर पञ्जाब देश मालवा प्रांत में क्षत्रिय कुल में हुआ था। आप श्री साधुबेलातीर्थ में वि० सं० १६१० में आये, वैशाखो करी। वि० सं० १६१६ भाद्रों वदी २ के दिन स्वामी जी के शिष्य हुये। उस समय आपकी आयु २२ वर्ष की थी वि० सं० १६४४ में यमनोत्री, गंगोत्री, दोनों केदार, बद्रीनारायण करके लौटते लालसांगा में श्रावण शुदी १५ के दिन संध्या ४ बजे देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ५१ वर्ष की थी।

श्री १००८ स्वामी वनखण्डी जी महाराज की गुरुवंश परम्परा तौतचतुर्थाश्रमी उदासीन सम्प्रदाय की इस प्रकार है यथा :—

( १ ) ओंकार ( २ ) ईश्वर ( क ) इस ईश्वर से तीन भेद विष्णु, ब्रह्मा, महेश की चली।

( ३ ) विष्णु ( ४ ) ब्रह्मा ( ५ ) सनक, सनन्दन, सनत्कुमार सनातन चारों पुत्र ब्रह्मा के थे और शिष्य हंसभगवान् उदासीन महात्मा के थे। इन चारों में से सनक के शिष्य नारद जी थे।

( ६ ) नारद ( ७ ) कपिल ( ८ ) कपिल जी ने अपनी माता देवहूती और दुर्वासा को उपदेश दिया था परन्तु दुर्वासामुनि कपिल के शिष्य थे ( ९ ) दुर्वासा ( १० ) पराशरज्ञानी ( ११ ) यमदग्निमुनि ( १२ ) परशुराम मुनि पुत्र शिष्य दोनों थे। १३ ( ख ) कौशिक मुनि ( १४ ) कुशाक मुनि ( १५ ) सुप्रभुमुनि ( १६ ) श्री वर्द्धनमुनि ( १७ ) वत्समुनि ( १८ ) सुखदर्शनमुनि ( १९ ) कनकमुनि ( २० ) भास्करमुनि ( २१ ) महेन्द्रमुनि ( २२ ) मार्तण्डमुनि ( २३ ) अरविंदमुनि ( २४ ) मकरन्दमुनि ( २५ ) हेमाद्रमुनि ( २६ ) तपनिधिमुनि ( २७ ) सर्वेश्वरमुनि ( २८ ) श्रवणविन्दमुनि ( २९ ) पद्माक्षमुनि ( ३० ) रत्नमुनि ( ३१ ) हरियशमुनि ( ३२ ) चन्द्रमुनि ( ३३ ) मतंग-मुनि ( ३४ ) चमनमुनि ( ३५ ) त्रिलोचनमुनि ( ३६ ) प्रभाकर-मुनि ( ३७ ) दुःखमोचनमुनि ( ३८ ) दाड़िभमुनि ( ३९ ) प्रतापवानमुनि ( ४० ) पद्ममुनि ( ४१ ) सुखेनमुनि ( ४२ ) चन्द्रगुप्तमुनि ( ४३ ) श्रुतसिद्धमुनि ( ४४ ) माधवमुनि ( ४५ ) आचरणसिद्धमुनि ( ४६ ) हरिनारायणमुनि ( ४७ ) चन्द्रचूड़ मुनि, ( ४८ ) हरदत्तमुनि ( ४९ ) रमेशमुनि ( ५० ) कृपाराम मुनि ( ५१ ) वाह्लीक मुनि ( ५२ ) दिनेशमुनि ( ५३ ) निजानन्द मुनि ( ५४ ) ब्रह्मानन्दमुनि ( ५५ ) सच्चिदानन्द मुनि ( ५६ ) हारीतमुनि ( ५७ ) त्रिलोकराममुनि ( ५८ ) वरुचमुनि ( ५९ ) कुण्डलमुनि ( ६० सुरथमुनि ( ६१ ) सुचेतमुनि ( ६२ ) उदय-प्रकाशमुनि ( ६३ ) स्वरूपसिद्धमुनि ( ६४ ) लक्ष्मीरक्षमुनि

( ६५ ) सुमेरदास मुनि ( ६६ ) हरिगंभीरमुनि ( ६७ ) रामऋषि मुनि ( ६८ ) चतुर्भुजमुनि ( ६६ ) भाष्यमुनि ( ७० ) रत्ताराम ( ७१ ) अतीतमुनि ( ७२ ) वेदमुनि ( ग ) वेदमुनि के दो चेले हुये बड़े का नाम अविनाशीराम जी छोटे का नाम सन्तरैण मुनि ( सन्तरैण जी के चेले श्री गुरुनानकदेव निर्वाण हुये थे) ( ७३ ) श्रीगुरु अविनाशीराम जी ( ७४ ) श्री गुरु श्रीचन्द्र जी ( ७५ ) श्रीगुरु गुरुदत्ताजी ( ७६ ) श्री गुरु गोइन्दजी ( ७७) श्रीगुरु कमलनयन जी ( ७८ ) श्रीगुरु गुरुमुखिया जी ( ७९) श्री गुरु चिन्तामणि जी उर्फ अचिन्तमुनि भी कहते थे। ( ८०) श्रीगुरु नन्दलाल सोहिना जी ( ८१ ) श्री गुरुमीहांजी (८२) श्रीगुरु मलजी (८३) श्रीगुरु सन्तोषी जी (८४) श्रीगुरु संगतदास जी (८५) श्रीगुरु गुरुमुखदास जी (८६) श्रीगुरु गुरुदयाल जी (८७) श्रीगुरु श्यामदास जी (८८) श्रीगुरु भगतराम जी (८६) श्रीगुरु रत्नदासजी (६०) श्रीगुरु मेलाराम जी (६१) श्रीगुरु मेलारामजी के चेले श्री साधुबेलातीर्थाधिप श्री १००८ सद्गुरु बनखण्डी जी महाराज (६२) श्रीगुरु हरिनारायणदास जी (६३) श्रीगुरु स्वामी जयरामदास जी (६४) स्वामी हरिनामदास जी वर्तमान हैं।

नोट:—(क) (ख) (ग) अक्षरों के अनुसार पैराओं का अर्थ समझ लेना। जो अक्षर कोष्ठ में आये हैं, उन पैराओं का अर्थ इस तरह है,

(क) नोट—प्रथम काषाय वस्त्र ( गेरुआ वस्त्र ) धार ॐ सोऽहम् मन्त्रोपदेश देकर चरणोदक दिया। देखो उदासीनों का "ॐ सोऽहम् मंत्र" निर्वाणोपनिषद् में।

(ख) नोट— इन्हीं कौशिकमुनि उदासीन के चेले भगवान् रामचन्द्र उदासीन राजा दशरथ के पुत्र थे।

(ग) नोट—यह पहले वर्ण के ब्राह्मण थे पीछे मुनि होने

श्रीमान् १०८ महाराज बाबा करमदासजी उदासीन

कर पहला ऋषि शब्द का प्रयोग चला आया ऐसा उक्त सभी जगह जान लेना। मुनि नाम साधु का है।

वि०सं० १६१५ के चैत्र शुक्ल २ को एक महान् योग्य महात्मा बाबा कर्णदास जी भी यहाँ आकर रहने लगे जो वि० सं० १६२१ के आषाढ़ शुक्ल ४ को शिकारपुर गये श्री स्वामी हरिप्रसाद जी के साथ वि० सं० १९२१ आश्विन शुदी ११ के दिन कोठारी होकर साथ में रहने लगे, फिर साथ में ही श्री साधुबेलातीर्थ में आये।

वि० सं० १६३२ भाद्रों शुदी १५ प्रात: ६ बजे को कोठार की गद्दी पर स्वामी हरिप्रसाद जी ने बैठाया। बाबा कर्णदास जी की आयु पूर्ण ८५ वर्ष की थी। वि० सं० १६५२ फाल्गुन वदी ४ शनिवार प्रात: २ बजे देवलोक पधारे।

श्री स्वामी बनखण्डीजी महाराज का नित्य नियम इस प्रकार था, प्रात:काल ३ बजे बाबा हरिनारायणदासजी उनको जगाते थे और प्रात:स्मरण करके शौच क्रिया से निवृत्त होकर स्नान पाठपूजा संध्यावन्दन कर सूर्य को अर्घ्य देकर उनको प्रणाम और परिक्रमा करते थे फिर १० बजे गद्दी पर आकर विराजमान होते थे। प्रेमियों को दर्शन देकर उनसे वार्तालाप करके विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। पीछे श्रीमद्भागवत की कथा कर १२ बजे साधु महात्माओं और अतिथियों को जो भी तीर्थ पर उपस्थित होते उनको भोजन कराते और आप भी करते थे पुनः थोड़ी देर विश्राम कर फिर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और सायंकाल योग-वाशिष्ठ की और रात्रि को पारसभाग की कथा करते थे। प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णमासी को रामायण की कथा भी करते थे क्योंकि विद्यार्थियों का पाठ उन दिनों पर बंद रहता था। इस प्रकार सारा समय ईश्वर परायण ही रहते थे और आज तक सब गद्दीधर भी अपना नियम इसी प्रकार रखते आते हैं।

# षष्ठ सर्ग
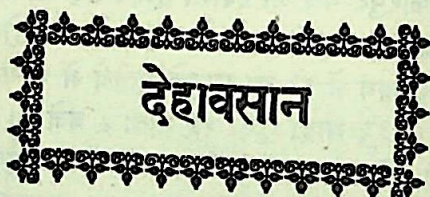
## देहावसान

अब स्वाजी जी को एक सौ वर्ष पूरे होने पर थे अपने शरीर को अधिक समय के लिये संसार यात्रा कराना वे पसन्द नहीं करते थे। अतः वे अपना जीवन खेल समेटने के अभिप्राय से सभामंडल में बैठे हुये हरिनारायणदास आदि चेलावर्ग तथा कई गृहस्थों के प्रति अपना आशय प्रकट कर कहने लगे कि अब शरीर को १०० वर्ष से अधिक रखना हम उचित नहीं जानते हैं और अपने पीछे इस तीर्थस्थान को सुरक्षित तथा सुप्रतिष्ठित रखने के लिये अपने सिंहासन (गद्दी) का युवराज हम हरिनारायणदास जी को को ठहराते हैं ऐसे बचन सुनकर सभामंडल में सन्नाटा छा गया। किसी को कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ। किन्तु स्वामी हरिनारायणदास जी से रहा न गया। वे खड़े होकर हाथ बाँधकर कहने लगे कि हे परम माननीय गुरु जी मैं तो सदैव आपकी सेवा में ही प्रसन्न रहता हूँ अतएव आपके पीछे भी मैं सेवाधारी बनकर ही रहना चाहता हूँ और गद्दी का अधिकार

मेरे बदले में मेरे गुरुभाई हरिप्रसाद जी को देवें और जब तक वे काशी से आवें तब तक कृपया अपने शरीर को रखें । हम अभी ही हरिप्रसाद जी को तार द्वारा सूचना देते हैं। स्वामी जी कहने लगे हमने तेरे को ही युवराज बना दिया है आगे फिर तेरी इच्छा है जिसको भी गद्दी का अधिकार सौंप दे । हरिनारायणदास जी कहने लगे मेरी इच्छा सर्वथा हरिप्रसाद जी को गद्दी देने की है आप कृपा करके उनके आने तक अपने शरीर को स्थित रखें । स्वामी जी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार की और उसी समय वि० सं० १६२० के ज्येष्ठ शुक्ला २ को चन्द्ररात्रि के दिन प्रातः आठ बजे को हरिनारायणदास जी को युवराज पदवी देकर अपना भगवा सिरोपाव (अचला) भगवा चोला उसके गले में डाला और गद्दी का तिलक भभूती का अपने हाथों से दिया । हरिप्रसाद जी जो अपने गुरु की आज्ञा से काशी विद्या पढ़ने गये थे उनको शीघ्र आने के लिये तार भेजी गई।

उन दिनों में अर्थात् वि० सं० १६२० तक तार कराची तक लग गई थी और रेलगाड़ी मुल्तान तक ही आ सकती थी आगे को रास्ता बनता जाता था । इसलिये हमारे भावी अधिष्ठाता स्वामी हरिप्रसाद जी को यहाँ पहुँचने में १५ दिन लग गये। आते ही स्वामी जी को दण्डवत प्रणाम कर सबसे यथोचित रीति से मिले तत्पश्चात् श्री स्वामी बनखण्डी जी सबको बुलाकर कहने लगे कि आज रात्रि को तीन बजे हमको शरीर यात्रा समाप्त करनी है । शुभ मुहूर्त सूर्य भी उत्तरायण में हैं तुम लोग सावधान रहना हमारी कोई समाधि बनवानी नहीं किन्तु इस जर्जरीभूत शरीर का सिन्धु सप्तनद के परम पावन जल में समाधि करना । हम अपनी समाधि में सामान्य रूप से अभी से लगे हुये हैं और दो बजे रात्रि को दसवें द्वार में प्राण रन्ध्र

करके अन्तिम श्वास ले लेंगे। शरीर छूटने की यह परीक्षा भी तुम लोग कर सकते हो जो माखन मँगा कर मेरे मस्तक पर रखना यदि वह कभी भी नहीं पिघले तो जान लेना कि हम शरीर से अलग हो गये।

रात्रि का भोजन करके सब चेले सेवक सावधानी से स्वामी जी के आगे बैठ गये। आधीरात भी बीत चुकी थी। दो बजे स्वामी जी ने पूरक प्राणायाम किया। घंटा भर प्राण कुम्भकरूप में रहा जहाँ से फिर रेचक रूप में कभी नहीं आया। माखन रख कर यथा दृष्ट परीक्षा भी की गई किन्तु वह पिघला नहीं। इसी से सब लोग जान गये कि हमारे महाराज योगाचार्य गुरु जी आत्मानन्द में सदैव के लिये लीन हो गये। वह दिन बुधवार का था और वि० सं० १९२० के आषाढ़ मास के कृष्ण-पक्ष में द्वितीया का प्रवेश था। सबेरा होते ही पूज्य स्वामी जी के शरीर त्याग की वार्त्ता आस पास फैल गई और सक्खर भक्खर रोहड़ी आदिक समीपवर्ती नगरों से बहुत लोग आकर एकत्र हो गये बड़ी सजधज और समारोह से स्वामी जी की जलसमाधि क्रिया की गई।* स्वामी हरिनारायणदास जी ने शुभ मुहूर्त देख कर प्रातः उसी दिन ११॥ बजे स्वामी हरिप्रसाद जी को राजतिलक देकर गद्दी पर बैठाया।

स्वामी बनखण्डी जी के देहावसान के पीछे भी एक अलौकिक घटना हुई। एक शिकारपुरी सेठ बम्बई से एक मोतियों की माला स्वामी जी को भेंट करने को ले आया। जब उसने नवे

*नोटः—गुरु बनखण्डी महाराज जी के चलाने की शोक चिट्ठी आई की सबूती भी मेरे पास मौजूद है इसलिये उक्त लिखा वि० सं० १९२० आषाढ़ वदी २ बुधवार ठीक है।
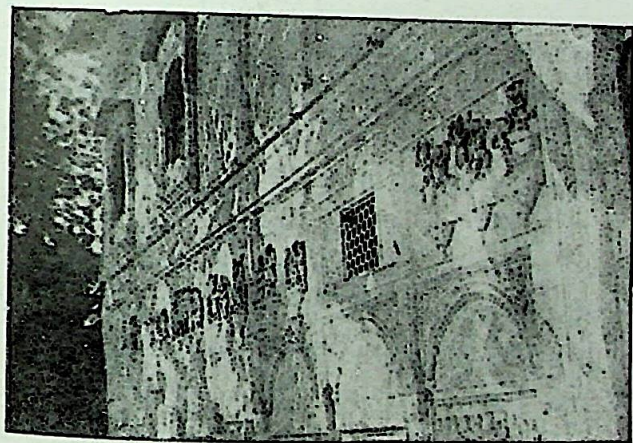
(ख) गुरु मंदिर के पश्चिम दिशाका चित्र

सक्खर में आकर स्वामी जी के शरीरपात की वार्ता सुनी तब वह अत्यन्त ही खिन्न चित्त हो गया। उसकी स्वामी जी में बड़ी ही श्रद्धा थी और उसको यह भी निश्चय था कि स्वमो जी सर्व शक्तिसान पूर्ण योगेश्वर थे। अतः वह श्री सिन्धुगङ्गा के किनारे पर मन में यह ठांन के बैठ गया कि जब तक स्वामी बनखण्डी जी यहाँ आकर अपनी माला नहीं लेवेंगे तब तक मैं यहाँ से न उठूँगा और न अन्न जल ही ग्रहण करूँगा। इस परम श्रद्धालु सेठ को वहाँ बैठे दो दिन बीत गये, रात को स्वामी जी उसको स्वप्न में मिले और कहने लगे कि मैं तेरा अचल विश्वास और प्रेम देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। कल मेरा शरीर तेरे समीप नदी में देखने में आयेगा तब तू यह माला अर्पण करके अपनी मनोकामना पूर्ण करना। तीसरे दिन वैसा ही हुआ जैसा गतरात्रि को स्वामी जी स्वप्न में कह गये थे। स्वामी जी का मृत शरीर सिन्धु गंगा के अगाध जल से प्रकट हो गया और उस ( सेठ घुरियामल मोदी नाम था ) ने माला पहना करके अपनी मनोकामना पूरी की। यह वार्ता चारों ओर फैल गई और कई नर और नारियाँ यह विचित्र चरित्र देखने को आ सम्मिलित हुये। श्री साधुबेलातीर्थ के सब साधु महात्मा वहाँ आकर प्राप्त हो गये थे। वे उस शरीर को श्री साधुबेलातीर्थ में ले गये और बड़े उत्साह और समारोह से पुनः स्वामी जी के शरीर को श्री सिन्धुगंगा के कलोल लोल तरंगों में जलसमाधि दे समाधित किया।

अब स्वामी जी हमारे पास नहीं हैं तथापि उनका प्रातः स्मरणीय पवित्र नाम कभी जानेवाला नहीं। हमारे पूर्वज योगियों के सम्बन्ध में कई अलौकिक कार्य करने की कुशलता अनेक शास्त्रों में प्रसिद्ध है। अतः श्री १००८ स्वामी बनखण्डी जी के सम्बन्ध में भी ऊपर वर्णित असाधारण कार्यों में कोई सन्देह नहीं आ सकता। इसमें भी कोई संशय होना नहीं चाहिये कि श्री स्वामी

बनखण्डीजी ऋद्धि सिद्ध सम्पादित पूर्ण योगेश्वर थे। अतः इनके लिये ऐसे कार्य कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी। श्री स्वामी बनखण्डी जी के जीवन से योगशास्त्र की सत्यता के बिना और अन्य शिक्षायें भी मिलती हैं जो यहाँ संक्षेप से भी वर्णन की जायँ तो भी पुस्तक बहुत बढ़ जायगा। अतः हम पाठकों को यह कहकर ही संतुष्ट करते हैं कि वे देहमुक्त होते हुये भी परम दयालु, परोपकारी तीर्थों और सब देव देवियों को मानने वाले हिन्दू सनातनी सच्चे उदासीन साधु थे। जिसका हाल विस्तार से श्री गुरु बनखण्डी भजनावली गुरुमुखी तथा गुरुसाखी सूर्योदय चरितामृत जो हिन्दी, अंग्रेजी सिन्धी फारसी भाषाओं में छपे है तथा श्री गुरु बनखण्डी चरितामृत जो संस्कृत में छपा है उनमें पढ़ सकते हैं।

इति श्री मत्सिन्ध्वादि सप्तनद मध्यवर्त्ति श्री साधुबेलातीर्था-धिष्ठातृयोगिराज पूज्यपाद श्री १००८ मत्स्वामि बनखण्डी सिंह-सनासीन श्रीमदुदासीन वर्य्यं परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ मत्स्वामि हरिनामदासाज्ञया कार्ष्णिनारायणदासेन विनिर्मितं श्री गुरु बनखण्डी चरितं समाप्तम्।

—हरि ॐ तत्सत्—

ॐ श्री गुरु बनखण्डी विजयतेतराम् ॐ
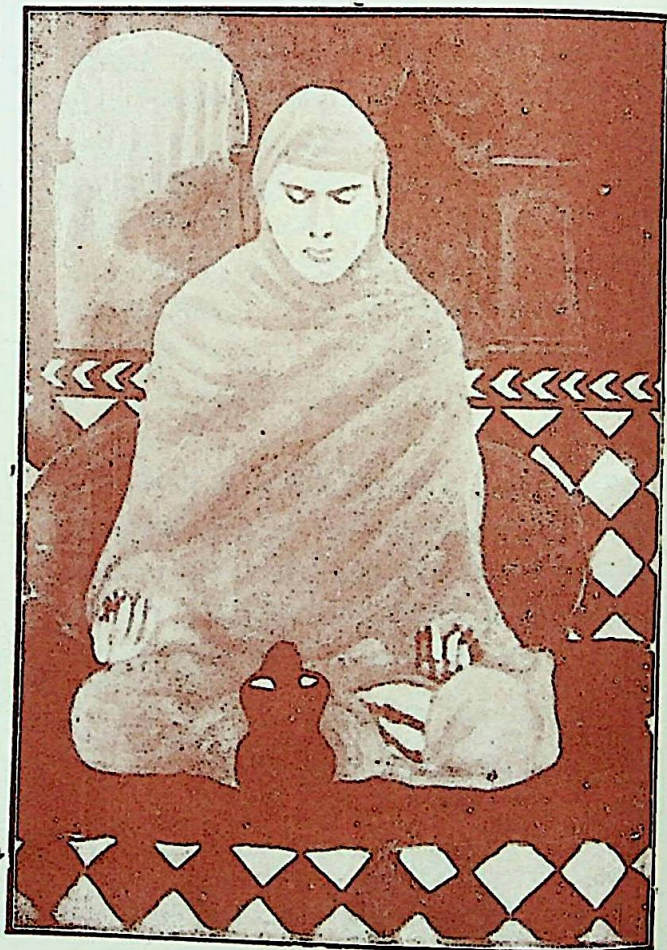
श्री १०८ स्वामी हरिप्रसादजी महाराज उदासीन

# सप्तम सर्ग
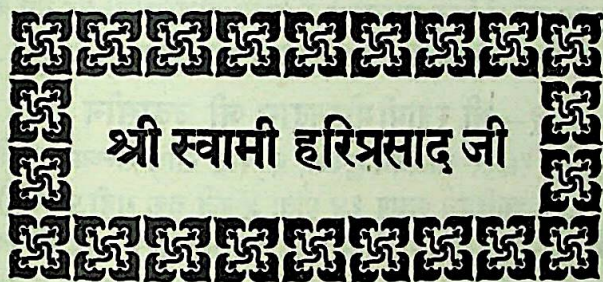
## श्री स्वामी हरिप्रसाद जी

( वि० सं० १६२० आषाढ़ कृष्ण २ प्रातः ११॥ बजे बुधवार से १६२१ आश्विन शुक्ल २ चन्द्ररात्रि सन्ध्या ८ बजे तक प्रथम वार गद्दी पर रहे )

श्री स्वामी बनखण्डी जी के अनन्तर श्री स्वामी हरिनारायणदास जी ने अपने अधिकार से श्री स्वामी हरिप्रसादजी को गद्दी पर बिठाके तिलक दिया और भगवा सिरोपाव और चोला उनको पहनाया। कोठारी की गद्दी पर श्री स्वामी हरिनारायणदासजी स्वयं विराजमान थे। श्री स्वामी हरिप्रसाद जी मतभेद होने से शीघ्र ही साधुबेलातीर्थ छोड़ कर चले गये। एक वर्ष साढ़े तीन महीने और १४॥ घंटे गद्दी पर बैठे और शिकारपुर में जाकर बाबा कर्णदास जी को भी कोठारी बनाकर साथ में कर लिया और साधु चेतनप्रकाश आदि भी साथ में थे फिर सिन्ध के कई ग्रामों में सदोपदेश देते रटन करते रहे। वि० सं० १६२४ के हरद्वार कुम्भ पर पधारे। साथ में कई साधु और उस समय के प्रसिद्ध भगत पहलूमल और मूर्जराम भी साथ में गये।

कभी कभी भगत रुघुराम भी साथ में रहता था और कुम्भ करके फिर भगत लोग वहाँ से रवाना हो गये और स्वामी हरिप्रसाद जी अपनी मूर्तियों सहित काश्मीर, अमरनाथ यात्रा को गये। वहाँ से फिर मथुरा वृन्दावन में होली करके चैत्रमास में काशी जी पहुँचे। वहाँ ही फिर पढ़ते रहे। वि० सं० १९२६ में काशी से प्रयागराज कुम्भ पर गये थे फिर भारतवर्ष के अन्य तीर्थस्थानों पर गये और वहाँ से फिर ६ साल के पीछे लौटे इसके बीच में..........

## ३—श्री स्वामी मोहनदास जी उदासीन

(वि० सं० १६२१ आश्विन शुक्ला २ चन्द्र रात्रि सन्ध्या ६ बजे से सं० १६२५ आश्विन कृष्ण १४ प्रात: ५ बजे तक गद्दी पर रहे) को स्वामी हरिनारायणदास जी ने गद्दी पर बिठाया। आप श्री स्वामी बनखण्डी उदासीन जी के पन्द्रहवें नम्बर के शिष्य (चेला) थे। वि० सं० १६२८ के माघ संक्रान्ति को आपने उदासीन सम्प्रदाय में प्रवेश किया। आप बहुत वृद्ध हो गये थे अत: थोड़े समय के पीछे ही चार साल गद्दी पर बैठ कर वि० सं० १६२५ आश्विन कृष्ण १४ को प्रात:काल ५ बजे ७५ वर्ष की अवस्था में देवलोक को पयान किया उन्होंने अपना पहला चेला नारायणदास जन्म गढ़ियासीन जिला सक्खर वि० सं० १६२२ में किया। जो वि० सं० १९३२ शिकारपुर में देवलोक हो गया। आपकी पूर्ण आयु ४० वर्ष की थी। इनका चेला दयालदास वि० सं० १९७० में देवलोक हुआ। दयालदास का चेला नाऊराम वि० सं० १९४३ में शिकारपुर सिन्धु में देवलोक हुआ।

## ४—श्री स्वामी सन्तदास जी उदासीन

(वि० सं० १६२५ आश्विन कृष्ण १४ प्रात: ८ बजे से १६२९ आश्विन कृष्ण ४ संध्या ६॥ बजे तक गद्दी पर रहे)



श्री स्वामी मोहनदास जी के पीछे स्वामी हरिनारायणदास जी
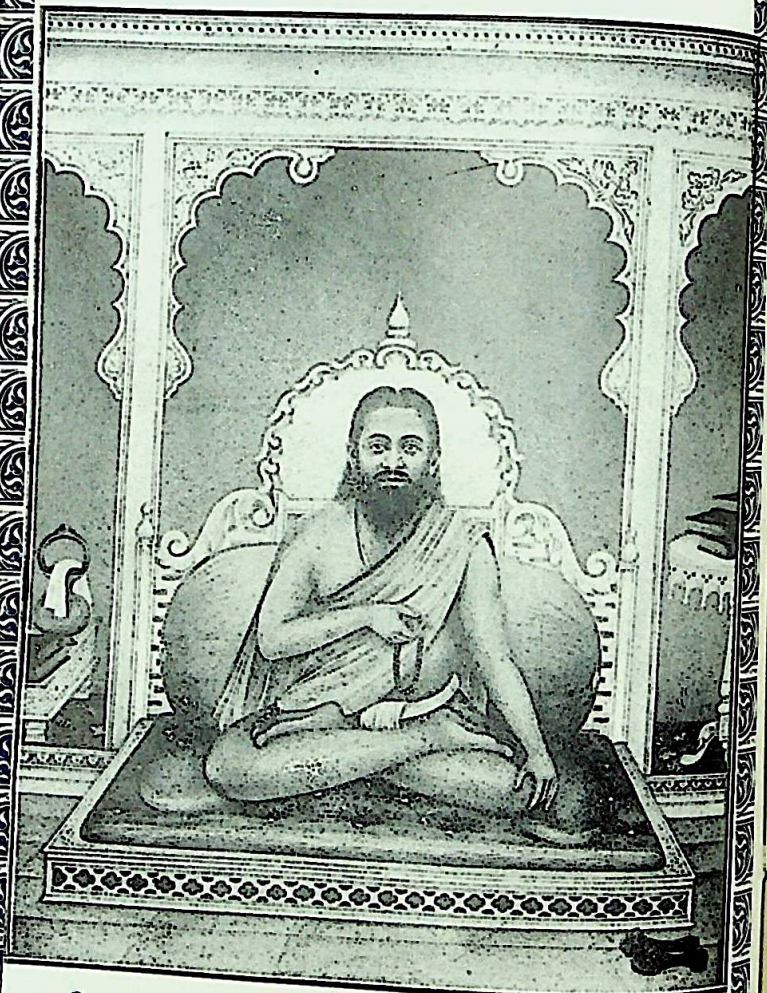
श्री १०८ निर्वाण स्वामी हरिनारायणदासजी उदासीन

ने श्री स्वामी सन्तदास जी उदासीन को गद्दी पर बैठाया। आप श्री १००८ गुरु उदासीन वनखण्डी जी के १४वें नम्बर के शिष्य (चेला) थे। वि० सं० १९१७ में श्री स्वामी जी के चेला बनकर आपने उदासीन सम्प्रदाय को सुशोभित किया। इन्होंने वि० सं० १९३१ चैत्र शुदी १५ दिन कृष्णदास को चेला किया। वि० सं० १९४२ भाद्रों में वृन्दावन में देवलोक हुआ।

वि० सं० १९३० में वैशाखी श्री साधुबेलातीर्थ की करके दूसरे दिन आप चारो धाम की यात्रा करने को गये। स्वामी हरिप्रसाद जी की राय से ३ साधु आपके साथ थे। वि० सं० १९३० फाल्गुन शुदी १४ को श्री साधुबेलातीर्थ में आये।

## श्री गुरु उदासीन हरिनारायणदास जी

इनके दीक्षा गृहीत शिष्य (चेले) १४ थे। जिनका संक्षिप्त व्यौरा उनके नाम और गुरु उदासीन सम्प्रदाय में आने की मिति तथा देवलोक होने की मिति पूर्ण आयु सहित सबकी जुदा २ नीचे लिखते हैं।

**(१) बाबा मंगलदास जी :**—वि० सं० १९०७ चैत्र शुदी १ को चेले बने। वि० सं० १९४८ ज्येष्ठ शुदी ११ नौ बजे दिन को देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ७५ वर्ष की थी।

**(२) बाबा गुरुमुखदास जी :**—वि० सं० १९०७ में श्रावण शुदी १५ को चेले बने। वि० सं० १९३२ आश्विन कृष्ण ११ को ४६ वर्ष की आयु में अमृतसर को तरफ चले गये।

**(३) बाबा ज्ञानदासजी :**—वि० सं० १९०७ पौष शुदी १ चन्द्ररात्रि दिन चेले बने। वि० सं० १९५८ प्रथम आषाढ़ वदी ११ के दिन देवलोक पधारे। आपकी पूर्ण आयु ४९ वर्ष की थी।

(४) बाबा संगतदासजी :—वि० सं० १९११ वैशाखी के दिन चेले बने। वि० सं० १९२० आश्विन वदी १२ को श्री साधुबेलातीर्थ से चले गये। उस वक्त आपकी आयु ३८ वर्ष की थी।

(५) बाबा प्रेमदास जी :—वि० सं० १९२१ दीपमाला के दिन आप चेले बने। वि० सं० १९६७ ज्येष्ठ वदी ११ दिन देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ७५ वर्ष की थी।

(६) बाबा मेहरदास जी :—वि० सं० १९२३ माघ संक्रान्ति दिन चेले बने। १९४० चैत्र शुदी २ दिन देवलोक हुये। आपकी आयु पूर्ण ५० वर्ष की थी।

(७) बाबा मानदास जी :—वि० सं० १९२४ माघ संक्रान्ति के दिन चेले बने। वि० सं० १९४७ चैत्र शुदी ११ सन्ध्या ८ बजे देवलोक हुये। पूर्ण आयु ६० वर्ष की थी।

(८) स्वामी जयरामदासं जी :—वि० सं० १९२५ आश्विन शुदी १० को ११ बजे दिन के चेले बने। वि० सं० १९५० प्रथम आषाढ़ वदी ८ बुधवार सन्ध्या दिन के ४ बजे देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ६० वर्ष की थी।

(९) बाबा पूरणदास जी :—वि० सं० १९२५ चैत्र वदी १५ को चेले बने। वि० सं० १९७२ माघ शुदी ३ देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ६५ वर्ष की थी।

(१०) बाबा हरीदास जी :—वि० सं० १९२६ दीपमाला के दिन आप चेले बने। वि० सं० १९६५ में अलहयारटंडा में पौष वदी १३ को देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ६५ वर्ष की थी।



(११) बाबा हरदास जी :—वि० सं० १९२७ अन्नकूट

कार्तिक शुक्ल १ के दिन आप चेले बने। १९७० में देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ७५ वर्ष की थी।

(१२) बाबा साधुराम जी :—वि० सं० १९२८ आषाढ़ शुदी १५ को चेले बने। १९३१ कार्तिक २८ तारीख संक्रान्ति को देवलोक हुये। पूर्ण आयु ५१ वर्ष की थी।

(१३) बाबा हरनामदास जी नागा :—वि० सं० १९२८ आश्विन शुदी १५ शरद पूर्णिमा दिन चेले बने। १९५८ प्रथम श्रावण शुदी २ दिन देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ५१ वर्ष की थी।

(१४) बाबा कवलदास जी :—वि० सं० १९२९ में वैशाखी को चेले हुये। वि० सं० १९३९ आश्विन महीने में पंजाब चले गये।

वि० सं० १९०२ बाबा हरिनारायणदास जी गुरु बनखण्डी जी के साथ प्रयागराज कुम्भ पर गये साथ में जगन्नाथ, रामेश्वर दोनों द्वारिका की यात्रा करी। वि० सं० १९०३ में कराची रास्ते श्री साधुबेलातीर्थ में आये। फिर वि० सं० १९०८ में गुरु बन-खण्डी जी महाराज के साथ प्रयागराज की अर्द्ध कुम्भी करने गए। फिर वि० सं० १९१४ में कार्तिक शुदी ८ को प्रयागराज कुम्भ पर पूज्य स्वामी बनखण्डी जी महाराज से आज्ञा लेकर स्वामी हरिनारायणदास जी ३१ साधुओं को साथ लेकर सक्खर से अग्निबोट द्वारा मुल्तान से रेलद्वारा हरिद्वार, मुरादाबाद, नैमिषारण्य, लखनऊ, अयोध्या, काशी से होते विन्ध्याचल देवी का दर्शन करते प्रयागराज का कुम्भ किया फिर पटना, हरिहरक्षेत्र से होकर चित्रकूट आये फिर कानपुर होते मथुरा वृन्दावन में होली करी। आगरा देखते हाथरस आये। कासगंज से सोरों गंगा गये फिर दिल्ली पटियाला, फलौली, कुरुक्षेत्र

अमृतसर होते वि० सं० १६१५ वैशाख वदी १५ को श्री साधुबेलातीर्थ में आ गये। फिर वि० सं० १६२८ कार्तिक वदी १ सक्खर से अग्निबोट द्वारा चलकर कराची से दोनों द्वारिका, सुदामापुरी, प्रभासक्षेत्र जूनागढ़, भड़ौच, सूरत होते बम्बई आये। फिर नाशिक त्र्यम्बक गोदावरी होते ओंकारेश्वर करते उज्जैन पहुँचे। फिर चित्रकूट करते प्रयागराज का स्नान किया। फिर गया जी होते हरिहरक्षेत्र को करते काशी दर्शन कर अयोध्या होते लखनऊ में गोमती स्नान कर मुरादाबाद में रामगङ्गा का स्नान किया। फिर हरद्वार स्नान कर ऋषिकेश से फिर हरद्वार आये। दिल्ली, आगरा देखते मथुरा होते कुरुक्षेत्र होते अमृतसर देखते उसी साल में चैत्र वदी १५ को श्री साधुबेलातीर्थ में आये। इस यात्रा में आपके साथ भगतराम मिसीवाला और आयाराम जोहीवाला, नारायणदास ये तीनों सेवा वाले आपके साथ थे।

अब श्रीगुरु उदासीन हरिनारायणदास जी की आयु ८० वर्ष की हुई थी, अतः वे भी वैकुण्ठधाम पधारने वाले थे। इसलिये उन्होंने श्री स्वामी सन्तदास जी के पीछे बड़ी गद्दी पर बैठने के लिये युवराज पद वि० सं० १९२६ भाद्रों वदी ५ प्रातः ८ बजे अपने आठवें शिष्य (चेला) स्वामी जयरामदास जी को दिया और आप वि० सं० १६२६ के भाद्रों वदी ७ को ८० वर्ष की आयु में दिन के दो बजे वैकुण्ठधाम सिधारे। सिन्धु सरस्वती गंगा में जलसमाधि किया। इनके पश्चात् उसी दिन ६।। बजे सायंकाल को कोठार की गद्दी पर स्वामी जयरामदास जी बैठे।

श्री स्वामी जयरामदासजी बड़े ही नीतिज्ञ और बुद्धिमान् थे। उन्होंने स्वामी सन्तदास जी की अनुमति से स्वामी हरिप्रसाद जी को लाके फिर गद्दी पर बिठाया जो कि तीर्थयात्रा से होकर वि० सं० १६२८ के श्रावण शुदी १५ को तुलसीदास के बगीचे सक्खर में आकर रहने लगे थे और स्वामी सन्तदास जी वि० सं० १६२६

आश्विन वदी ४ को सन्ध्या ६॥ बजे बड़ी गद्दी छोड़कर कोठार की गद्दी पर बैठे और साथ में श्री स्वामी जयरामदास जी भी रहे।

## ५—श्री स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन

वि० सं० १९२९ आश्विन कृष्ण ४ सन्ध्या ६॥ बजे से वि० सं० १९४० मार्गशीर्ष कृष्ण ६ दिन के ३ बजे तक गद्दी पर रहे।

### द्वितीयवार

इस समय तक श्री साधुबेलातीर्थ में कच्ची कुटियायें ही बनी हुई थीं किन्तु अब दृश्य ने पलटा खाया, कई काम इन महात्माजी के राज में होने पाये जो हम आगे चलकर वर्णन करते हैं। पहले इनकी की हुई तीर्थयात्रा से परिचित हो लें। वि० सं० १९२४ में हरद्वार कुम्भ, वि० सं० १९३६ में पुनः हरद्वार का कुम्भ बद्रीनारायण आदि की यात्रा की। वि० सं० १९३८ में प्रयागराज का कुम्भ और अन्य तीर्थों की याने रामेश्वर, द्वारिका दो धाम की यात्रा पर गये। वहाँ स्वामी जी का बड़ा सम्मान और सजधज रही। जहाँ कहीं जाते साधुओं और अतिथियों को भोजन, विद्यार्थियों को पुस्तक और उदासीन पण्डितों को सम्मान तथा भेटपूजा देकर प्रसन्न रखते थे। कई बार पण्डितों की सभायें कीं और उनके शास्त्रार्थ कराये। कई विद्वान् इनकी स्तुति के श्लोक संस्कृत में बना कर लाये थे जिनमें से खादी खण्डन के टिप्पणीकर्त्ता पण्डित मोहनलाल जी के चार श्लोक नमूने के तौर पर देते हैं*

येषांदिक्षु समन्ततोहि विमलं व्याप्तं यशोनिर्मलम् ।
कीर्तिञ्चाप्यनुकीर्तियन्ति कवयः सर्वत्र येषां शुभम् ॥

---

*स्वामी हरिप्रसाद जी का जीवन चरित्र विचार माला सटीक में छपा है।

शांताः स्वात्मरता विवेक जल धौ स्नाताश्च ये सर्वदा
धन्याः स्वामि हरिप्रसाद मुनयस्तेऽस्यांक्षितौ सर्वतः ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनका निष्कलंकित निर्मल यश समस्त दिशाओं में व्याप रहा है, विद्वान् लोग जिनकी शुभकीर्ति का सर्वत्र कीर्तन करते हैं जो शांत स्वभाव वाले आत्मध्यान में मग्न और त्रिकाल विचार रूपी समुद्र में स्नान करने वाले हैं वे स्वामी हरिप्रसाद जी मुनि इस पृथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्य हैं ॥ १ ॥

यैस्तीर्थेष्वनिशं दयालु हृदयेरभ्यागता भूरिशः ।
पात्राऽन्नादिभिरादारेण विविधैर्ग्रन्थैश्च संप्रीणिताः ॥
अन्यैश्चेष्ट मनोरथैर्बहुविधैः सन्तर्पिताः साधवः ।
धन्याः स्वामि हरिप्रसाद मुनयस्तेऽस्यांक्षितौ सर्वतः ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस दयालु हृदय वालों से तीर्थों में अनेक याचक लोग पात्र, अन्न ग्रन्थादिकों से सन्तोषित किये गये और साधु लोगों के अन्य प्रकार के कई मनोरथ पूरे किये गये वे स्वामी हरिप्रसाद जी मुनि ( मुनि अर्थ साधुओं का है ) इस पृथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्य हैं ॥ २ ॥

सन्त्यस्यां भुविभूरिशस्तनु भृतः स्वार्थेऽनुरक्ताः परम् ।
येवाञ्छन्ति परार्थ मेव सततं ते दुर्लभा देहिनः ॥
ज्ञात्वेत्यात्ममनो धनं वपुरिदं यैःस्वंपरार्थेऽर्पितम् ।
धन्याः स्वामि हरिप्रसाद मुनयस्तेऽस्यांक्षितौ सर्वतः ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मही में अपने अपने स्वार्थ में तत्पर बहुत ही लोग हैं। जो दूसरों का फायदा चाहते हैं वे दुर्लभ ही हैं यह जानकर जिन्होंने अपना तन, मन, धन परोपकार में अर्पण किया है वे श्री स्वामी हरिप्रसाद जी महाराज इस पृथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्य हैं ॥ ३ ॥

काश्यां साधुसभा कराल कलिना लुप्ता पुरा पाप्मना ।

आसीत्साधु महात्मना सुमनसा तत्त्वार्नभिज्ञैर्जनैः ॥

यैः साधून्निखिलान्निमन्त्र्य परितः प्रोज्जीवितासापुनः ।
धन्याः स्वामि हरिप्रसादमुनयस्तेऽस्यांक्षितौ सर्वतः ॥ ४ ॥

भावार्थः—पहले काशी क्षेत्र में उत्तम मनवाले साधु महात्माओं की ऐसी सभा तत्व के न जानने वाले मूर्ख लोगों के लड़ाई झगड़ा करने के पाप से लुप्त हो गई थी वह सभा सब विद्वान् साधु लोगों को चारों ओर से निमन्त्रण देकर फिर से जिन्होंने स्थापित की वे स्वामी हरिप्रसाद जी महाराज इस पृथ्वी पर सर्व प्रकार से धन्य हैं ॥ ४ ॥

श्री साधुबेलातीर्थ में कई राजे अमीर और सेठ साहूकार लोग दर्शन को आते थे और रुपयों की थैलियाँ भेंट कर अपने हाथ सफल करते थे। साधु और विरक्त महात्माओं को पैसा जमा करने की शास्त्रों में बना है। अतः स्वामी हरिप्रसाद जी भी जो पैसा आता था वह साधुओं महात्माओं के सुख के लिये श्री साधु-बेलातीर्थ स्थान बनाने में व्यय करते थे।

वि० सं० १६३० से ३२ में चन्द्रकूप वि० सं० १६३७ में गुम्बज (बुर्ज), वि० सं० १९३१-३४ में गुरु बनखण्डी मंदिर और १९३४ में कोठार बना। वि० सं० १९३० में उत्तर की तरफ पीपल वृक्ष से गऊघाट तक बन्दर ३१ में ३० वाला आधा बन्दर फिर दूसरी बार गोले पत्थर से भरकर ऊपर सिन्धी पत्थर का फर्श लगा तथा सिन्धी पत्थर का राजघाट से पीपल तक बन्दर ३२ में गऊघाट से देवीघाट तक ३३ में देवीघाट से हरद्वार घाट तक बन्दर ३४ में राजघाट से कूप से परे तक बन्दर ३६ में हरद्वार घाट से कुशावर्त घाट तक बन्दर ३७ में कूप घाट से कुशावर्त घाट सहित तक पक्का बन्दर बना।

वि० सं० १६३७ में कुशावर्तघाट को जाने के लिये ऊपर की सात सीढ़ी बनी। वि० सं० १९३७ में गुरु बनखण्डी मंदिर के

साथ पिछाड़ी दो कुटिया ३७ में गऊघाट डाट की बडी पक्की छोटी ईंटों की कुटी वि० सं० १६३८ में टट्टी के पूर्व तरफ वेट की बड़ी नाली बनी। वि० सं० १९३४ और ३९ में दो बार राज-घाट और हरद्वार घाट के मध्य में सिन्धी पत्थर का फर्श लगा ३९ में पंगत का शिवमंदिर बना और ४० में गुरु वनखण्डी मन्दिर के भीतर का संगमरमर का फर्श लगा।

वि० सं० १६३२ भाद्रों शुदी १४ को ४२ वर्ष की आयु भोग श्री स्वामी सन्तदास जी शाम के ८ बजे देवलोक पधारे। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजे हरिप्रसाद जो की सम्मति से श्री स्वामी जयरामदास जी ने स्वामी सन्तदास जी की जगह पर बाबा कर्णदासजी को कोठार की गद्दी पर अपने साथ कर लिया। वि० सं० १९३४ श्रावण वदी को स्वामी हरिप्रसाद जी बारह मूर्ति साधुओं को साथ लेकर अमरनाथ यात्रा को श्री साधुबेलातीर्थ से गये और भाद्रों शुदी १५ को लौट के श्री साधुबेलातीर्थ में आये। बाबा कर्णदास जी कोठारी और चेतनप्रकाश भी साथ गये आये थे।

वि० सं० १९३६ में स्वामो हरिप्रसाद जी हरिद्वार कुम्भ पर गये वहाँ से गंगोत्री, यमनोत्री, बूढ़ा केदार, केदारनाथ, बद्री-नारायण की यात्रा भी करते आये। वि० सं० १६३८ में फिर प्रयागराज कुम्भ पर गये और दो धाम रामेश्वर तथा दोनों द्वारिकानाथ से भी होते आये। दोनों बार तीर्थों पर विद्वानों की सभायें भंडारे आदि लगाते रहे। ३६-४० में समस्त बन्दर (डंगे) दो दो रद्दे चौगिर्द ऊँचा किया तथा समस्त घाटों की दो २ सीढ़ियाँ ऊपर कीं। ऊँची कर ज्यास्तो बनाईं। चौगिर्द बनेरा (पलेवरा) सहित बना।

श्री स्वामी हरिप्रसाद जी उदासीन के शिष्यों (चेलों) का विवरण इस प्रकार है—

भंडार, पंगत, मंदिर श्रीमहादेवजी
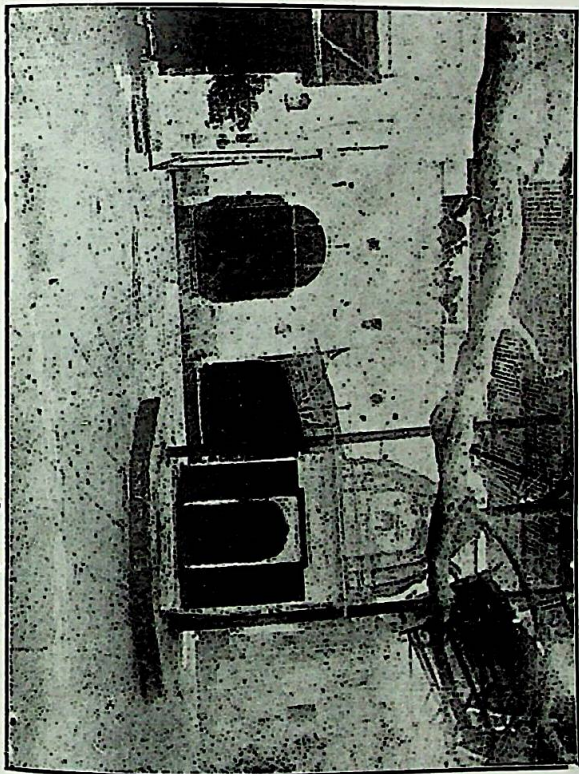
**१—बाबा आत्मप्रसाद जीः**—सं० वि० १९२९ मकर संक्रान्ति के दिन शिष्य ( चेला ) बने। वि० सं० १६७४ पौष वदी ६ रविवार देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ७६ वर्ष की थी।

**२—बाबा जयप्रसाद जी :**—वि० सं० १९३४ वैशाख शुदी १५ में शिष्य अर्थात् चेला हुये और वि० सं० १९६७ श्रावण शुदी ११ को श्री साधुबेलातीर्थ में प्रातः ५ बजे देवलोक पधारे। अपकी पूर्ण आयु ६५ वर्ष की थी।

**३—बाबा बालाप्रसाद जी :**—वि० सं० १९३४ आषाढ़ वदी २ को शिष्य ( चेला ) हुये। वि० सं० १९८० भादो वदी ३ बुद्धवार प्रातः १ बजे कनखल में देवलोक हुये। आपको पूर्ण आयु ६० वर्ष की थी।

**४—बाबा हरीशरणप्रसाद जी :**—वि० सं० १९३५ आषाढ़ वदी २ को प्रथम चेला भये। वि० सं० १९४० आषाढ़ शुदी १५ को देवलोक हुये आपकी पूर्ण आयु ४० वर्ष की थी।

**५—बाबा कृष्ण प्रसाद जी :**—वि० सं० १९३५ आषाढ़ वदी २ को द्वितीय चेला याने पिछला चेला हुये। वि० सं० १९४१ आषाढ़ शुदी १५ को देवलोक हुये। आपकी पूर्ण आयु ३९ वर्ष की थी।

**—श्री स्वामी अचलप्रसाद जी :**—वि० सं० १९४० मार्गशीर्ष वदी ६ दिन २ बजे शिष्य ( चेला ) बने।

स्वामी हरिप्रसादजी अब ७५ वर्ष भोग चुके थे, अतः वे वि० सं० १९४० के मार्गशीर्ष ६ दिन के २ बजे शरीर त्याग न करते भये। देवलोक गमन से पहले स्वामी अचलप्रसाद जी को अपनी कृपा का पूर्ण पात्र समझकर गद्दी का तिलक दे गये। और उसी ही दिन

उनको उदासीन सम्प्रदाय में प्रवेश कराके भीतर बाहर ब्रह्मानन्द के रंग से रंचित कर दिया।

## ६—श्री गुरु स्वामी अचलप्रसाद जी उदासीन

वि० सं० १९४० मार्ग शीर्ष वदी ६ सन्ध्या ४ बजे से वि० सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ मंगलवार दिन के दो बजे तक गद्दी पर रहे।

श्री गुरु उदासीन स्वामी हरिप्रसाद जी के पश्चात् उसी ही दिन शाम को ४ बजे बाबा कर्णदास जी ने स्वामी अचलप्रसाद जी उदासीन को गद्दी पर बैठा के राज्याभिषेक किया।

यह स्वामी जी लखीसरदास नाम से सिन्ध देशवर्ती लुकमान नगर के समीप टंडानिहालखान के लक्षाधीश सेठों में से थे। धर्माचार अनुसार गृहस्थधर्म पूरा करके वृद्धावस्था में स्वामी हरिप्रसाद जी की शरण में आकर रहने लगे आपके दिनों में वि० सं० १९४० और १९४१ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के भीतर का फर्श संगमरमर लगकर समाप्त हुआ और वि० सं० १९४२ में बँगले के भीतर का तख्त संगमरमर का बना।

वि० सं० १९४१ में भंडार वाली जगह बनी। ४२-४३ में बँगला, तांढ़ी बनी। शीघ्र ही स्वामी जी का चित्त उपराम हो गया और वि० सं० १९४३ ज्येष्ठ कृष्ण १४ मंगलवार दिन के २ बजे गद्दी छोड़ दिया। ज्येष्ठ शुदी ७ उसी साल के शाम को ५ बजे तीर्थ यात्रा पर चले गये और वि० सं० १९६९ माघ शुदी १२ मङ्गलवार संध्या ५॥ बजे को अपने गुरुद्वारे के सामने तपोवन में देवलोक पधारे। माघ शुदी १३ बुधवार मध्याह्न ११ बजे जल-समाधि किया। आपकी आयु ८५ वर्ष की पूर्ण थी।

## ७—श्री गुरु स्वामी जयरामदास जी उदासीन

वि० सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ मङ्गलवार दिन के २ बजे से
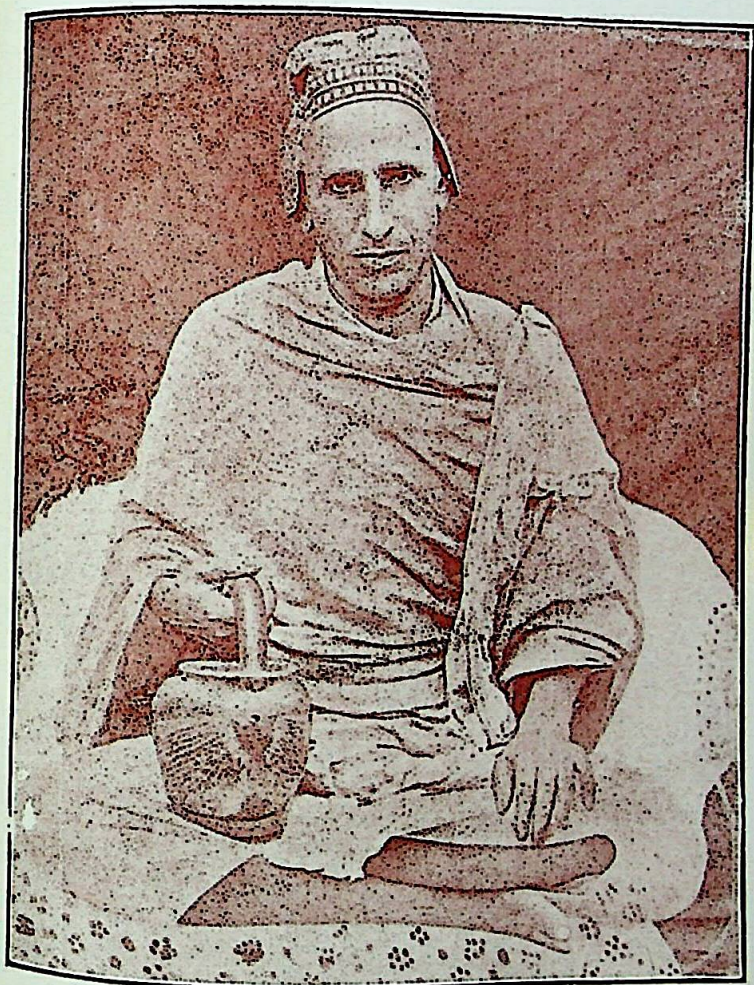
श्री १०८ स्वामी अचल प्रसादजी महाराज उदासीन
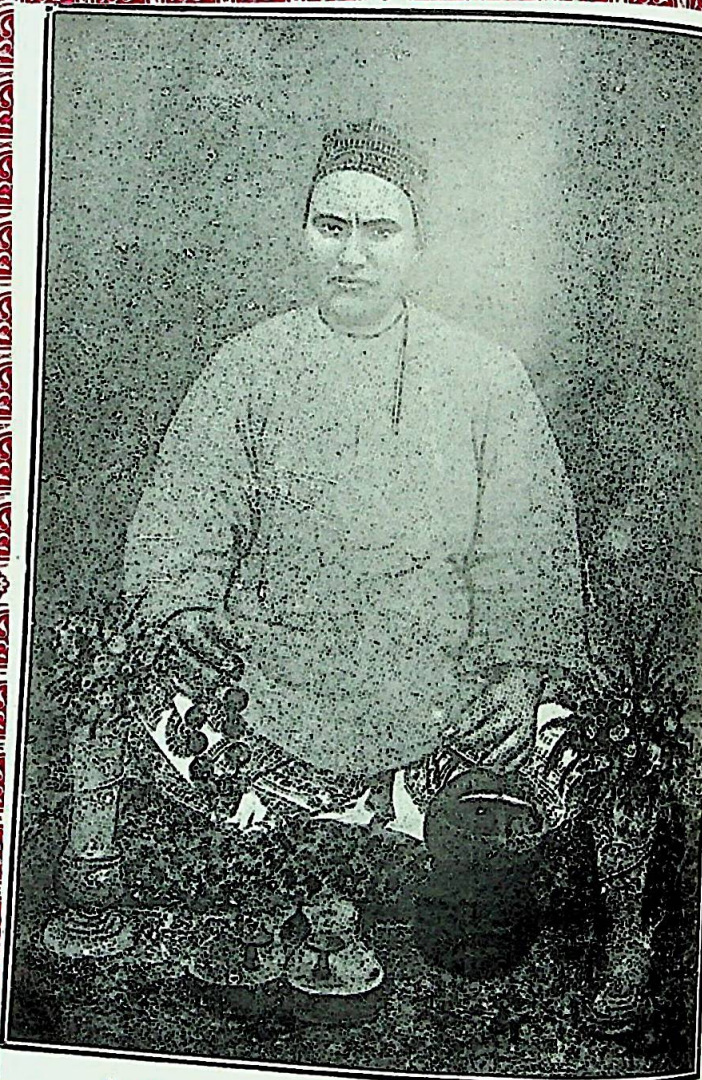
श्री १०८ पूज्यपाद गुरू स्वामी जयरामदासजी महाराज उदासीन।

वि० सं० १९५० प्रथम आषाढ़ वदी ८ बुधवार संध्या के ४ बजे तक गद्दी पर रहे।

श्री स्वामी अचलप्रसाद जी अपने जाने से ८ दिन पहले वि० सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ को मङ्गलवार दिन २ बजे गद्दी पर श्री स्वामी जयरामदास जी को बिठाया। क्यों न बिठावें उनसे बढ़कर उस समय और कौन था। आपको तो १४ वर्ष पहले ही श्री स्वामी हरिनारायणदास जी ने युवराज नियत किया था और स्वामी सन्तदास जी के पीछे आप सिंहासनासीन हो सकते थे किन्तु आप बड़े ही निस्वार्थी तथा निरभिमान थे। आपने अपने मान, बड़ाई और आधिपत्य की कुछ भी परवाह न कर गद्दी पर दो महात्माओं को बैठने दिया। आपका त्याग अत्यन्त सराहनीय है।

आपका जन्म वि० सं० १८९० चैत्र शुदी २ संध्या ८ बजे का जोधपुर रियासत में पचपदरा तालुका के बालोत्रा ग्राम का था। वर्ण के राजपूत क्षत्रिय और योधासिंह के नाम से विख्यात थे। ३४ वर्ष की आयु में गृह कुटुम्ब का त्याग कर ईश्वर परायण रह कर जन्म सफल करने के लिये पूर्ण गुरु की खोज में निकले।

वि० सं० १९३४ के कार्तिक वदी २ को श्री साधुबेला तीर्थ में आकर प्राप्त हुये और यह परम पावन स्थान श्रेष्ठ साधुओं से सज्जित देखकर श्रीगुरु उदासीन स्वामी हरिनारायणदास जी के शिष्य (चेला) बनकर वि० सं० १९२५ विजय दशमी पर उदासीन सम्प्रदाय को सुशोभित करने लगे। वि० सं० १९४१ में गोदावरी कुम्भ और दक्षिण की यात्रा और वि० सं० १९४२ में उज्जैन कुम्भ किया। आठ साधु साथ थे। आपके दिनों में यह स्थान बने।

वि० सं० १९४५ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के बरामदे का पूर्व उत्तर तर्फ का सङ्गमरमर का फर्श लगा और गोपालकुञ्ज

छत बारह थमले साथ बनी। वि० सं० १९४७ में पंगत की साथ वाली अन्न कुटियायें बनीं।

४९-५० में सभामण्डल की लकड़ी की छत लगी और गद्दी वाला सिंहासन संगमरमर की बारहदरी और नीचे का संगमरमर फर्श बन कर तैयार हो गये। पास मटों वाली जगह भी बनी।

अब आपका यात्रा प्रसङ्ग वर्णन करते हैं, जैसे आपके पूर्वज कुम्भादि पर्वों पर तीर्थयात्रा करते रहे तैसे आपने भी यह नियम नहीं छोड़ा ठीक है छोड़ना भी नहीं चाहिये था क्योंकि तीर्थों पर कई पापी लोग आकर अपने पाप धो जाया करते हैं तब अपने को पावन करने के लिये तीर्थवृन्द आप जैसे महात्माओं के पदरज के आकांक्षी रहते हैं। अतः आप वि० सं० १९४४ में प्रयागराज की अर्द्धकुम्भी पर गये। वि० सं० १९४८ में हरद्वार कुम्भ किया। वि० सं० १९४९ में हरद्वार की महावरुणी का मेला किया।

जब २ तीर्थों पर गये तब २ भण्डार दान पुण्यादि करते रहे। अपने गुरुओं के नाम को अति विस्तृत रूप में विख्यात करते और कुम्भों पर छावनी पाते रहे। वहाँ से लौटकर श्री साधुबेला तीर्थ में आये वि० सं० १९५० की ज्येष्ठ शुदी २ चन्द्रराात्रि को प्रातः ९ बजे आप सङ्गमरमर की गद्दी वाले नवीन सिंहासन पर विराजते भये*। श्री गुरु उदासीन स्वामी जयरामदास जी के शिष्यों (चेलों) का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

**(१) बाबा केवलदास जी :**—वि० सं० १९४३ ज्येष्ठ वदी १४ मङ्गलवार दिन के २ बजे शिष्य (चेला) हुये और वि०

---

*आपकी विस्तृत जीवनी "सद्गुरु बनखण्डी चरितामृतम्" के साथ "सद्गुरु श्री १०८ स्वामी जयरामदास जी का जीवन चरित" के नाम से छप चुकी है।

सं० १६५० ज्येष्ठ शुदी ११ प्रात: ४ बजे हरद्वार में ६५ वर्ष की आयु में देवलोक पधारे ।

(२) श्री स्वामी हरिनामदास जी :—वि० सं० १६४४ आश्विन शुदी १५ को शिष्य (चेला) हुये । वर्त्तमान सिंहासन पर विराजमान हैं ।

(३) बाबा सन्तदास जी :—वि० सं० १६४६ माघ संक्राति को शिष्य (चेला) हुये और वि० सं० १६५३ ज्येष्ठ शुदी ११ को प्रात: ११ बजे श्री साधुबेलातीर्थ में देवलोक पधारे । आपकी पूर्ण आयु ४२ वर्ष की थी ।

(४) बाबा गङ्गादास जी :—वि० सं० १६४८ हरद्वार कुम्भ पर कुम्भ के दिन चैत्र शुदी १२ को चेले हुये । १८ वर्ष की आयु मे फाल्गुन शुदी ६ वि० सं० १६६१ में प्रात: ८ बजे वैकुण्ठ लोक पधारे श्री साधुबेलातीर्थ में ।

(५) आत्मादास जी :—वि० सं० १६४६ माघ संक्रान्ति के दिन चेला हुये ।

(६) बाबा ठाकुरदास जी :—वि० सं० १९४६ माघ संक्रान्ति के दिन चेला हुये ।

(७) बाबा बसन्तदास जी :—वि० सं० १६४६ बसंत ५ के दिन चेला हुये और वि० सं० १६५३ श्रावण शुदी २ को तीर्थ से चले गये ।

(८) बाबा हरीशरण जी :—वि० सं० १६४६ बसन्त पचमी के दिन चेला हुये । अब तक श्री साधुबेलातीर्थ में हैं ।

वि० सं० १६५० के प्रथम (इस साल दो आषाढ़ थे) आषाढ़ वदी ८ बुधवार शाम को ४ बजे ६० वर्ष की अवस्था में श्रीगुरु उदासीन स्वामी जयरामदास जी देवलोक को पधारे । इनका

शरीर श्री सिन्धु गंगा के परम पुनीत जल में समाधि किया ग
उस समय वही समारोह रहा जो श्री १००८ स्वामी वनखं
जी महाराज तथा अन्य स्वामियों के समय पर हुआ था।

देवलोक गमन से पूर्व उसी दिन प्रात: ४ बजे वे अ
शिष्य (चेला) स्वामी हरिनामदास जी को गद्दी का मालि
बनाय उनको अपना भगवा चोला और सिरोपाव देकर मस्त
पर तिलक भभूती का लगाय कर्णदास जी के हाथ में सुपुर्द किया

बोलै सो तरै
श्री सत्य नाम हरे।

स्वर्गवासी श्रीमान् बाबा हरिदास जी उदासीन

श्री साधुबेला तीर्थ, सक्खर (सिंधु)

Late Shriman Baba Haridasji Udasin,

SRI SADHBELA TIRATH SUKKUR (SIND).

Paramhans Paribrajkacharya, Udasinvarya

Shri 108 Swami Harnamdasji Maharaj Present

Gaddidhar Satguru Bankhandi Ashram,

Shri Sadhbela Tirath SUKKUR (Sind.)

Swamiji performing Katha of Hindu Religious Book

# अष्टम सर्ग

## ८—श्रीगुरु स्वामी हरिनामदास जी उदासीन

सं० १९५० प्रथम आषाढ़ वदी ८ बुधवार संध्या ५ वजे से आज तक गद्दी पर विराजमान हैं।

श्री गुरु उदासीन स्वामी जयरामदास जी के पीछे श्री स्वामी हरिनामदास जी ने सिंहासन को सुशोभित किया जिनका राज्याभिषेक बाबा कर्णदास जी उदासीन ने किया था। आज तक सङ्गमरमर के सफेद सिंहासन पर ऐसे शोभा देते हैं मानों कैलाश पर्वत पर श्री शंकर जी बैठे हुये हैं। चन्द्रमा जैसे शीतल, सूर्य समान तेजस्वी, समुद्र जैसे गम्भीर हैं, जप, तप, भजन, ज्ञान और विद्या के भण्डार हैं, देश जाति के सुधार का प्रचार कोई आपसे ही सीख लेवे। मधुर भाषणता आपकी प्रशंसनीय है।

सब धरती कागज करूँ लेखन सब बनराय।
सात सिन्धु को मस करूँ तब गुण लिखे न जाय॥

आप चाहें तो पृथ्वी भर के सब सुख ले सकते हैं किन्तु नहीं, आपने सब ऐश इशरतों को तिलांजलि देकर केवल शरीर पोषण और स्वास्थ्य रक्षा मात्र के लिये ही खान पान आदि व्यवहार रखा है। आपकी इच्छा होवे तो बड़ी बड़ी कीमत वाले वस्त्र पहन सकते हैं किन्तु नहीं आप साधारण से साधारण वस्त्र पहने रहते हैं। आप चाहें तो घोड़े, गाड़ियाँ, हाथी और मोटरें रख सकते हैं किन्तु नहीं ऐसे आनन्द लेने में आप अपने साधुत्व की हानि समझते हैं। आप चाहें तो अपने खाने के लिये नित्य कई स्वादिष्ट पदार्थ बनवाकर खा सकते हैं किन्तु नहीं जो कुछ भण्डार में बनता है वे सब साधुओं और यात्रिओं से मिलकर पंगत में बैठ कर खाते हैं। इन गुणों से केवल सिन्धुदेश में नहीं किन्तु भारतवर्ष के सभी प्रांतों में भी आप सर्वथा पूजनीय आदर की दृष्टि से देखे जाते और पूजे जाते हैं।

सर्वथा काल पारमार्थिक कार्यों और हरिभजन में मग्न प्रसन्न बदन, शान्त आत्मा तथा कोमल स्वभाव रखते हैं। सिन्धु देश का कोई ऐसा धार्मिक कार्य न होगा, जहाँ थोड़ी बहुत आपकी सहायता न पहुँचती हो। गौभक्त और पक्के हिन्दू सनातनधर्मी उदासीन भेष भूषण हैं। विद्या प्रचार में भी दत्तचित्त हो विद्वानों का सत्कार सबसे बढ़ कर करते हैं। क्या कहूँ, कहाँ तक आपकी प्रशंसा करूँ आप सर्वथा सर्वत्र और सर्वदा पूजा और स्तुति के योग्य हैं।

आपका जन्म श्री सिन्धु गंगा के पवित्र तट पर नवीन सक्खर नगर में वैश्य कुलावतंस सेठ आवतमल के गृह श्रीमती कृष्णा-बाई से हुआ था। जन्म का नाम श्री परमपवित्र नारायणदास था।

वि० सं० १६३७ पौष कृष्ण १० रविवार था जब आपने जन्म लिया था। वि० सं० १६३७ शक १८०२ पौष कृष्ण १० रवि घ ५३।८ विशाषा में २२-५१ अतिगंड २४॥३५ धन्वर्क=१४ तत्रेष्ठम् ३१।५५ श्री हरिनामदासस्य जन्मलग्नं ४ अंश १४
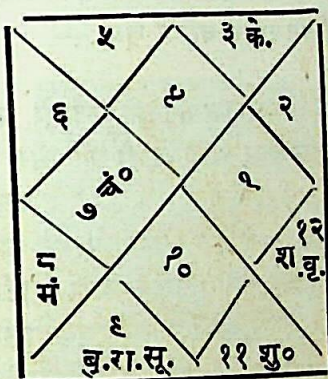
सात वर्ष की अवस्था में वि० सं० १६४४ आश्विन शुक्ल १५ को माता पिता के देने से श्री स्वामी जयरामदास जी के चेला हुये और वि० सं १६५० में प्रथम आषाढ़ वदी ८ बुधवार संध्या के ५ बजे गद्दी पर अपने गुरु की करुणामयी दृष्टि से बैठते भये।

श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी को गद्दी नशीन हुये २ वर्ष ८ महीने हुये थे तब बाबा कर्णदास उदासीन जी वि० सं० १६५२ में फाल्गुण वदी ४ शनिवार प्रातः दो बजे ८५ वर्ष की आयु में देवलोक पधारे। उनकी जगह पर कोठार की गद्दी पर उसी दिन ४ शनिवार ११॥ बजे दिन के श्री स्वामी हरिनामदास जी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य ( चेला ) बाबा हरीदास को बिठाया। जो संवत् १६५० के श्रावण शुक्ला पूर्णमासी को सबेरे १० बजे श्री स्वामी हरिनाम जी के शिष्य ( चेला ) हुए थे।

इसमें किसी को भी आनाकानी नहीं करनी होगी कि श्री साधुबेलातीर्थ एक अपूर्व दर्शनीय स्थान है। आपके कटिबद्ध पुरुषार्थ से तो वह और भी दिव्य और रमणीक बन गया है यह सिन्धु देश के लिये गौरव की बात है जहाँ के एक ऐसा मनोहर तीर्थस्थल है जो भारतवर्ष भर में विदित है। आपके दिनों में निम्नलिखित स्थान बने हैं यथा:—

वि० सं० १६५१-५२ राजगाट की ड्योढ़ी पक्की बनी। ५३-५४ में रामझरोखा के पास वाली लांढ़ी की चार कुटियाएँ ऊपर की जगहों याने मकान सहित, ५४ में हरद्वार घाट और आम की नाली से लेकर तुलसी थल्ले तक सिन्धी पत्थर का फर्श और गऊ-घाट के ऊपर छोटी डाट बनी। इसके ऊपर छोटी बगीची लगी। वि० सं० १९५४ में कोठार कन्ध सभामण्डलवाली में चूना लगा। वि०सं० १९५४ गुरु बनखण्डी मंदिर के बाहर परिक्रमा की दो छतें, एक छत बँधाई गई, एक छत बड़ी भीतर वाली इसपर नवी-पटियाँ, तन्दे, पकड़ने के लिए कड़ियाँ, सलंग, नवीं कड़ियाँ, कटहरे की दोनों छतों ऊपर नीचे को और बाहर परिक्रमा, नीचे ऊपर की कड़ियाँ नत्रियाँ पाईं। चद्दर ऊपर कड़ियाँ तख्ते और ऊपर ईंट कंकरी सब छतों ऊपर कंकरी, चूना, लगा पलस्तर और पश्चिम की दो कुटी की नीवों की मरम्मत हुई। ५४ में गऊघाट के साथ वाली बाहर की नीम वाली बड़ी कुटिया बयार की लकड़ी के सुन्दर दरजों के साथ ही हर एक फट्टों साथ में महा सुन्दर रोगन आदिकों से बनी और गऊघाट की छोटी डाट पर कुटी भी बनी। ५५ में गऊगाट का फ़र्श बना। गऊघाट से आम की नाली तक सिन्धी पत्थर का फर्श, ५६ में देवीघाट का थल्ला सिन्धी पत्थर का और गुरु बनखण्डी मन्दिर के उत्तर पश्चिम सिन्धी पत्थर का फर्श लगा।
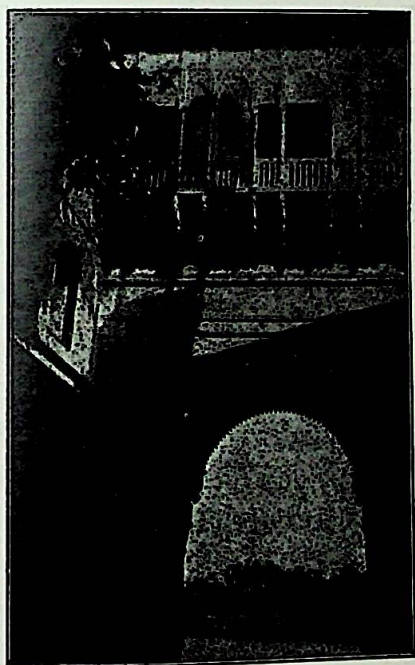
राज्य घाटकी ढयोढी संगमरमरकी
पूर्व दिशाका चित्र।

वि० सं० १९५६ में आड़ाखोड़ के छप्परों पर तथा दर्शनी दरवाजे के तीन छप्परों पर टीन लगा।

५६-५७ में कूप के चारों तर्फ फर्श सिन्धी पत्थर का और चटनी थल्ले का फर्श तथा छत और भण्डार बर्तन मलने वाला दूसरा थल्ला और कुशावर्तघाट के ऊपर बट याने (बड़) वृत्त वाले फर्श, वि० सं० १९५७ में दर्शनी दरवाजे क तीन छप्परों पर तथा आड़ाखोड़ के दोनों छप्परों पर टीन लगा।

५८ में तुलसीथल्ला संगमरमर का, ५९ में कोठार के पीछे का छोटा थल्ला संगमरमर का और मटों की नाली से लेकर गणेशघाट का फर्श सिंधी पत्थर का बना।

६० में भण्डार का फर्श अम्बाले के पत्थर का और आड़ाखोड़ के ऊपर बँगले छत में चादर छत, शीशे, दरवाजे, रङ्ग, मरम्मत, दो छप्परों पर टीन और दर्शनी दरवाजे के तीन छप्परों पर टीन लगा। गोपालकुंज की सिन्धी पत्थर की बड़ी दीवार ऊपर से छोटे घाट सहित बनी।

६०-६१ में बन्दर की टीप चौगिर्द लगी। ६१ में गोपालकुञ्ज का फर्श और बेट पानी में कुशावर्तघाट के नीचे का घाट ऊपर फर्श सिन्धी पत्थर का बना। ६१-६२ में गुरू बनखण्डी मन्दिर की पन्द्रह बड़ी और दो छोटी छतें, ६२ में आड़ाखोड़ के भीतर और पीछे की गली में थल्ले सहित फर्श सिन्धी पत्थर का बना। वि० सं० १९६३ में दर्शनी दरवाजे के तीन छप्परों पर टीन और आड़ाखोड़ के बाहर दो छप्परों पर टीन लगा।

६३-६४ में रामझरोखा पौढ़ी सहित बना और ६४ में उसके भीतर विद्यालय स्थापन हुआ। हवा बन्दर रामघाट सहित और कुशावर्तघाट के ऊपर दो नीम की कुटियायें और पंगत के ऊपर तीन लोहे के छप्पर लगे। श्री छोटा साधुबेलातीर्थ बसाया गया

और रामझरोखा के नीचे लाल पत्थर का फर्श लगा ६४-६५ में महादेववाली पंगत में खट्टू पत्थर का फर्श चौगिर्द लगा। ६५ में भीतर लाढ़ी को तथा बराएडे सहित में और गुरु बनखएडी मन्दिर के नीचे दो कुटियाओं को एक कर कुटी में और पंगत की अन्न कुटी में खट्टू पत्थर का फर्श लगा।

६६ में सभामंडल की छत और मटों की जगह और दर्शनी दरवाजे के दोनों मंजिलों में ईंटों की पौढ़ी पर खट्टू पत्थर की सीढ़ी लगी और ६६ में सूर्य कूप और शामिल साथ का बन्दर विष्णुघाट तक बना और भीतर के गुरु बनखएडी मन्दिर के बराएडे की तीन दीवारें जिनपर जय, विजय, दो शेर, दो मोरों और दो हाथियों सहित संगमरमर की बनी।

वि० सं० १९६७ में आड़ाखोड़ के बाहर दो छप्परों पर टीन और दर्शनी दरवाजे के तीन छप्परों पर टीन लगा।

६७-६८ में बड़ी दो डाटवाली टांकी वाली जगह हलट पानी वाली, ६७ में देवी जी के मन्दिर में और कोठार में ईंटों का फर्श, ६७-६८ में पैखाना ( टट्टी ) बाहर के फर्श समेत, ६८ में आड़ाखोड़ के साथ की दूसरी कुटियाओं में खट्टू फर्श लगा। ६९ में सभामंडल की सीढ़ी, संगमरमर के तीन डाके और लांढ़ी के भीतर दो बड़ी ईंटों की डाटें और टांकी के पास जल खींचने के दो हौज याने दो हलट खोहोड़ कुटी सहित और कुशावर्तघाट के पास बट वाली बड़ी कुटिया, विष्णुघाट सहित से शिवघाट तक बन्दर और ६९-७० में गुरु बनखएडी मन्दिर के बाहर थमलों डाटों के ऊपर शिखर की दो छतरियों समेत और बाहर की तीन दीवारें संगमरमर की, ७० में तुलसी थल्ले का और पंगत का बड़ा लोहे का छपरा बना। ७०-७१ में सत्यनारायण का बड़ा थल्ला दोनों तरफ की सीढ़ियों समेत और भण्डार कूप के उत्तर तर्फ वाली दो

कुटियायें बड़ी छोटी चटनी वाली और कूप के पूर्व की तरफ बर्तन तथा अचार मुरब्बे रखने की दो मंजिली जगह, बाहर साथ छोटा सिन्धी पत्थर के नीचे वाले थल्ले सहित बना। वि० सं० १९६९-७०-७१ में कैलाश महादेव जी के नीचे का गुम्बद बना।

७०-७१-७२-७३ तक कैलाश महादेव का मन्दिर बाहर के संगमरमर की परिक्रमा तथा ऊँचा फर्श लोहे का जँगले सहित और नीचे की दो जगहें पौढ़ी वाली बड़ी कुटिया और नीचे के बरांडे के रंगीन ईंटों के फर्श सहित बना। ७१-७२ में सत्यनारायण के साथ वाली कुटी बराण्डे वाले के ईंट फर्श सहित बनी।

वि० सं० ७२-७३-७४ में रामघाट की ओर दोनों तरफ वाली सिन्धी पत्थर की लम्बियाँ कुरसी ऊँची, ७३ से ७८ तक रामघाट के पूर्व कुर्सी पर गलीचा फर्श संगमरमर का लगकर टट्टियों तक तैयार हुआ। पश्चिम को भी फर्श लगकर तैयार हुआ। ७२-७३ में दुःखभंजनीघाट चार बुर्जों और बेट पानी वाले थल्ले सहित त्रिवेणीघाट, यमुनाघाट ऊँचे कोने तक बन्दर समेत और ७२ में नारायण घाड़ी की सिन्धी पत्थर की लम्बी चौड़ी गहरी नीम पश्चिम उत्तर बाली और पानी वाले थल्ले समेत बनी। इसी ७२ सम्वत् वाले को ७४ में डंगे को जल से ऊँचा किया। ७३-७४ में पंगत वाली आटे दाल की अन्न कुटी नीचे की तथा ऊपर की जगह पक्की ईंटों की ७५ में गार्डर लगा, रास्ता बना जँगले सहित और गुरु बनखण्डी मंदिर के पिछाड़ी दोनों कुटियाओं को एककर ऊँची डाट की ऊपर वाली छत करी नीचे की छत दोनों कोठियों की बराबर करी। पश्चिम दिशा वाली पिछाड़ी भीत संगमरमर की चौबीस अवतार चित्रों वाली संगमरमर की दीवारें बनीं और दक्षिण कोने में स्वामी

जयरामदास जी की और बाबा करुणादास जी की मूर्ति लगी। ७५ में गुरु बनखण्डी मन्दिर पौढ़ी वाली ऊपर की दो कोठो को एक कोठी कर ऊँची कर दी। ७५ में कुशावर्तघाट के बुर्ज से लेकर वन्दर सिन्धी पत्थर का सरस्वतीघाट, सूर्यघाट पौढ़ी (सीढ़ी) सहित बना।

७५ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के उत्तर देवीघाट के दक्षिण बड़ा और साथ का छोटा संगमरमर का थल्ला बना। ७६ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के पूर्व बुर्ज और थल्ले बीच सिन्धी पत्थर कुर्सी पर संगमरमर की कुर्सी लगी। ७५-७६-७७ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के पूर्व चौगान में फर्श संगमरमर का और दक्षिण के छोटा संगमरमर का दरवाजा बना।

वि० सं० ७६-७७-७८ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के ऊपर कुर्सी तथा जाली वाले पिंजड़े तथा पश्चिम वाली दो छतरियाँ तथा भीतर बाहर की ताकियों में दासा और खड़ाऊ और दो झरोखे लगे तथा बाहर पश्चिम की छोटी दीवार शिखर तक और आधी दक्षिण की दीवार शिखर तक संगमरमर की पूरी हुई। ७७-७८ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के नीचे तीनों बराण्डों में संगमरमर की फूलदार डाट लगी। ७५-७६-७ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के उत्तर चौगान में संगमरमर का फर्श लगा तथा मूर्ति वाले जँगले के भीतर संगमरमर का फर्श लगा।

वि० सं० ७५-७६-७७ में देवीघाट पर संगमरमर का दासा खड़ाऊ और ऊपर फर्श लगा तथा साथ में घाट के उत्तर की तरफ संगमरमर की छोटी नीम थल्ली तथा थल्ला गलीचे नमूने वाला लम्बी थल्ली पर सारे फर्श लगा तथा घाट के चौगान पश्चिम में लगा और गुरु बनखण्डी मन्दिर के अगाड़ी पूर्व दिशा तर्फ (सिन्धी पत्थर) पर चौक एक डाट के सहित लगा।

स्वामी जयगमदासजी बाबा कर्णदासजी
गुरू मंदिर के दक्षिण दिशाका चित्र
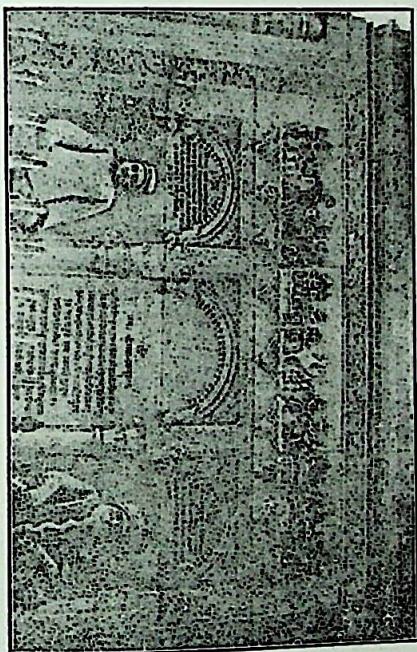
## "बम्बईघाट, रामघाट, कुञ्जगली"

७७ में रामघाट, दो कुटियाएँ, दो मंजिला पक्की ईंटों का चौबारा बना तथा कुञ्जगली के पीलपावे पक्की ईंटों के बने और ऊपर की तीन कुटिया में पक्की ईंटों की बनी तथा टट्टियों के दक्षिण भंगी के रहने के लिये कुटिया बनी। ७७-७८ में बम्बई घाट की पौढ़ी ऊपर वाली के साथ संगमरमर का थल्ला बना और बम्बई घाट के दोनों बुर्जों पर गलीचा फर्श सङ्गमरमर का बना।

## "छोटा साधुबेला, सत्यनारायण"

७६-७७ में सत्यनारायण के पूर्व की तरफ संगमरमर का थल्ला बना तथा सत्यनारायण मूर्ति रखी गई। ७७ में सत्यनारायण मन्दिर के भीतर खड़ाऊँ तया फर्श सङ्गमरमर का लगा और दीवार में सीमेन्ट का पलस्तर हुआ।

७८ में कैलाश महादेव के गणवाले का शिखर वाला छोटा मन्दिर बना। सत्यनारायण मन्दिर के पिछाड़ी, पूर्व, उत्तर, दक्षिण की तरफ कुटिया के आगे सिन्धो पत्थर का फर्श और दो खम्भा सिन्धी पत्थर के दरवाजे वास्ते बने। ७८ में सूर्यघाट के पास चैलों के लिए पक्कीईंटों की लांढ़ी बनी।

## "रेजकी कार्य, परचून काम"

७२ में देवीघाट के अगाड़ी को लोहे का फाटक बना। ७४ में गुरु बनखण्डी मंदिर के पश्चिम दक्षिण मूर्तियों के आगे लोहे का जँगला बना। सम्वत् १९७४-१९७५ में लम्बा जँगला दो लोहे के दरवाजे इकट्ठे गुरु बनखण्डी मंदिर के पश्चिम दिशा वरुणघाट के पास बने।

७५ में कुञ्जगली के पीलपावे ईंटों के पक्के बनवा कर गार्डर लोहे के पाकर ऊपर से लकड़ी के फट्टे की छत बनवाकर पलस्तर कच्चा कर दिया गया।

७५ में संगमरमर के वाड़े लोहे का फाटक तथा उत्तर दक्षिण को दो दीवारें बनीं। ७५ में गुरु वनखण्डी मंदिर के उत्तर की तरफ बगीचा के लिए ईंटों की थल्ली बनी तथा छोटी थल्ली, देवीघाट के दोनों किनारों के आगे सिन्धी पत्थर का फर्श लगा। ७५ में गऊघाट और नीम के बीच ईंटों की छोटी पक्की कुटिया बनी। वि० सं० १६७५ में बम्बईघाट, रसोई, कुटिया यात्री पंडित पाठशाला वालों को, वि० सं० १६७५ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के पूर्व दिशा में शिखर पिंजरा संगमरमर का, वि० सं० १६७५ में गुरु बनखण्डी मंदिर के आगे पूर्व दिशा में नीचे फर्श सिन्धी पत्थर के ऊपर संगमरमर नाली के दूसरे पार देवीघाट उत्तर की तरफ थोड़ा, ७८ में सङ्गमरमर लगा। ७४-७५ में चन्द्रकूप (भण्डार कूप) के साथ ईंटों की छोटी, बड़ी डाट वाली ११०० मन पानी की बड़ी एक टांकी बनी। वि० सं० ७५-७६ में हरद्वारघाट के बेट में सिन्धी पत्थर का बन्ध बाँधकर घाट से नदी तक कंकरीट चूने साथ मिलाकर भराव पाया। इसी बेट में गऊघाट से देवीघाट तक सिन्धी पत्थर का फर्श (थल्ला) बना। वि० सं० १६७६-७७ में गुरु बनखण्डी मन्दिर के उत्तर दिशा सङ्गमरमर फर्श चार चौक वाला बना। वि० सं० १९७६-७७ में हरद्वारघाट बायें तरफ बुर्ज पर सङ्गमरमर की छतरी बनी। वि० सं० १९७६-७७ में हरद्वारघाट के ऊपर मध्य में दरवाजा दो अन्दर एक हस्ती का बना।

७७ पौष वदी ४ में (आरम्भ) अन्नपूर्णा देवी के मन्दिर में सङ्गमरमर का सिंहासन और खड़ाऊँ तथा थल्ली गङ्गा यमुनी फर्श लगा तथा पूर्व तरफ दरवाजा निकाला। ७८ में हनूमानजी

के मन्दिर में सङ्गमरमर का फर्श लगा। ७८ में गणेशजी के मन्दिर के पिछाड़ी ब्रह्मालना में ईंटों के पील पावे लगाकर गार्डन पाकर छत बनवा कर भण्डार की जगह बनवाई गई, और गुरु श्री चन्द्रजी का मन्दिर बना। ७६ में नारायणघारी के उत्तर दिशा के कुबेरघाट से राम तलाई तक बन्दर बनाकर जल के लेवल से ऊँचा किया। साथ २ रामतलाई तथा तलाई के साथ दो छुड़े पत्थर की दीवारें बनीं।

७७ में कुबेरघाट की पिछली तरफ छुड़े पत्थर की दीवार बनी तथा बीच में छुड़े पत्थर कंकरीट का भराव पाया। ऐसे बीच का छोटा घाट भी बना। मध्य का यमघाट कोने का भैरव घाट बना। वि० सं० ७७-७८-७६-८० में राजघाट के ऊपर की पक्की ईंटों की ड्योढ़ी गिराकर संगमरमर के बंगले का प्रारम्भ होकर बना। ७८ में राजघाट की सीढ़ी सिन्धी पत्थर के ऊपर आगरा का पत्थर लगवा कर बड़ी सीढ़ी बनी। ७८ में चन्द्रकूप के पास आम के पेड़ से लेकर लम्बी काठगर रखने के लिए सिन्धी पत्थर की चूने के साथ दीवार बनी। वि० सं० १६८१-८२ में गऊघाट पर दो मंजिली कुटिया बनी।

वि० सं० १६८३ में बाग के पानी वास्ते मशीन तीर्थ में फिर ८४ में बिजली मशीन वि० सं १९८४-१६८५ में श्री साधुबेलातीर्थ में छोटे बड़े सभी जगहों में बिजली के खम्भे तारे लगाई गई।

वि० सं० १६८५ में रामझरोखा उर्फ पाठशाला के चौगिर्द नीचे रास्ते में लांढ़ी, बराण्डे में और आटे दाल की कुटी में और कुआँ नीम थल्ला चटनी वाले पर और छोटा साधुबेला समाधों के थल्ला पर कंकरीट, चूना-सीमेन्ट, गच लगा और समाधों के भीतर जगह में गंगा यमुना संगमरमर का फर्श और पाठशाला

के कमरे के नीचे ऊपर में टीन की चादर छत बनी और रंग किया गया और ८४ में नीचे कुटी ऊपर की ८५ में बिजली मशीन के ऊपर बिजलीघर की दो कुटियायें बराण्डे जंगले समेत बनीं।

वि० सं० १९८५-८६-८७ में सत्यनारायण मन्दिर के बाहर ( अगाड़ी ) गंगा यमुनी संगमरमर का फर्श बना। वि० सं० १९८७ में पाठशाला के चौगिर्द कटहरे के नीचे और ऊपर पोस्ट की कुटी भीतर टीन की चादरें और ऊपर सभी कुटियाओं तथा सीढ़ियों में टीन की पतरी दरजों में लगी।

वि० सं० १९८७ में सत्यनारायण मन्दिर के चौगिर्द बाहर दीवारों में संगमरमर लगने लगा। वि० सं० १९८७ में सत्यनारायण मन्दिर के बाहर बायें तरफ दो कुटिया और ऊपर पानी की बड़ी टांकी तथा नीचे पानी का तालाब बना।

वि सं० १९८८ में हरद्वार घाट के दायें बुर्ज पर पानी के मटों पर लोहे के गार्डर से लोहे का छपरा बना। वि० सं० १९८८ रामघाट से लेकर राजघाट तक ( कृष्णघाट, देवीघाट, गणेशघाट, हरद्वारघाट, गऊघाट, वरुणघाट, ) नया डंगा बना। छः दीवार बुनियाद जिसमें गऊघाट से हरिद्वारघाट तक छुड़े पत्थर चूने से बुनियाद से ऊपर तक दो दीवार ऐसा ही हरद्वारघाट से गणेशघाट तक दो दीवार और देवीघाट के पास एक दीवार बनी ( यह दीवारें नए पुराने डंगे के बीच में बनी ) देवीघाट से एक दीवार कृष्णघाट तक बनी।

नोट—वि० सं० १९८८ डंगे के नीचे लोहे की संकला ( संवल डालकर सीमेन्ट ब्लाक डाले गए पीछे से छुड़े पत्थर की चुनाई साथ पुश्ती दिया गया है, ऊपर से घड़ाऊ पत्थर की दीवार हैं। कृष्णघाट, देवीघाट, गणेशघाट को लोहे की सीखों वाले दरवाजे लगाए गए तथा गऊघाट की बाईं तरफ वाली

लकड़ी को टट्टियाँ उठाकर वरुणघाट पर टट्टी की दो कोठी ईंटों की बनाई गई।

वि० सं० १९८८-८९-९० तक नए हरिद्वारघाट वाले डंगे के बीच में मिट्टी का भराव पड़ता रहा। वि० सं० १९८८ में तथा डंगे पर उत्तर दिशा की तरफ रेलों बनेरा लगा। वि० सं० १९८९ में पूर्व दक्षिण दिशा तरफ रेलों का बनेरा लगा। वि० सं० १९९० में बिजली खम्भे बाग के रास्ते के ऊँचे किए गए। शिव-घाट से ब्रह्मघाट तक सीमेन्ट के ब्लाक से बुनियाद से नई दीवार तीनों तरफ सीमेन्ट के ब्लाकों से तैयार किया। बाहर छुड़े पत्थर डाले गए। फ़िर दुःखभंजनीघाट के पूर्व के बुर्जों पर सीमेन्ट के ब्लाकों की दीवार बनाकर डंगे की बराबरी कर ऊपर से गार्डर साथ टीआयरन डाल ईंटों की छत बनी। कंकरीट डाली गई। ब्रह्माघाट से दुःखभंजनीघाट की एक ही छत बनाई, छत पर ईंटों का फर्श लगाया। शिवघाट के नए डंगे में मिट्टी का भराव डालकर ऊपर से लोहे का और पीतल का कटहरा लगा। दुःख-भंजनीघाट के बाएँ तरफ बड़ी दीवार सीमेन्ट की बनी। वि० सं० १९८८ में शिवघाट और ब्रह्माघाट का थल्ला छुड़े पत्थरों से ऊँचा कर शिवघाट की सीढ़ी बनी। नीचे से सीमेन्ट के ब्लाक डालकर ऊँचा किया गया। दुःख भंजनीघाट के जल में रक्षा वास्ते रेलें लगाकर ईंटों से ढक कर पर्दा बनवा कर स्नान वास्ते नल लगा तथा एक बाएँ तरफ कोठरी बनी।

शिवघाट से लेकर विष्णुघाट तक सीमेन्ट के ब्लाक डाल कर ऊँचा किया, लोहे की पट्टियों से मज़बूत किया। फिर विष्णु-घाट पर तीन टट्टियाँ जल वाली बनाईं और लघुशङ्का की जगह बनाई।

त्रिवेणीघाट पर छुड़े पत्थर चूने से थल्ला बनाकर ऊँचा किया। साथ में तीन टट्टियाँ जल वाली और तीन टट्टियाँ सुकवाली

बनाईं । कुबेर घाट का थल्ला छुड़े पत्थर से ऊपर कर एक डाका सीमेन्ट का तथा डंगे पर ब्लाक डाल कर ऊँचा किया । यम घाट तक यमघाट का थल्ला छुड़े पत्थर से ऊँचा कर चार सीढ़ी सीमेन्ट की तथा थल्ला सीमेन्ट का बनाकर लघुशंका की जगह बनाई तथा और बीस फुट छुड़े पत्थर की दीवार बनी । बाद चार फीट ऊपर बगीचा तक बनाया । वि० सं० १९९० में देवी घाट के नीचे सीमेन्ट के डाके बढ़ा कर नीचे सीमेन्ट का थल्ला बनाया वि० सं० १९९० श्रीमान कोठारी बाबा हरीदास जी के बँगले की छत तथा दक्षिण वाला कमरा बना ।

वि० सं० १९९० में दुःख भंजनी घाट पर सामान रखने वास्ते गोदाम बनाया । वि० सं० १९९१ तक गोदाम में लकड़ी का काम होता रहा और बिजली की मशीन के पास खोहाड़े के पत्थर उखड़वा कर विष्णु घाट के नीचे बाएँ तरफ थल्ला सीमेन्ट का तीन सीढ़ीयां लम्बी सहित जलमें बना और सरस्वती घाट के बुर्ज समेत सूर्य घाट तक छुड़े पत्थरों की दीवार चूने से बनकर ऊपर सीमेन्ट के ब्लाक डाले । सरस्वती घाट से सूर्य घाट तक छुड़े पत्थर केरी चूना रेती से तीन फीट उसार ऊपर आधा फुट सीमेन्ट बजरी से ऊँचा किया ।

सरस्वती घाट से कुशावर्त घाट की टट्टियों तक डंगे पर सीमेंन्ट का ब्लाक डालकर ऊँचा किया और छुड़े पत्थर का थल्ला बनाकर चार टट्टियां जल वाली बनाईं और इस डंगे को सीमेन्ट के ब्लाक से ऊँचा किया तथा सरस्वती घाट को आदमी तक ऊँचा कर फिर सीमेन्ट के ब्लाक से बनवाकर घाट को ऊँचा किया । सरस्वती घाट के दोनों बुर्जों पर ईंटों की पगड़ी बनी। थोड़ा सीमेन्ट भी लगा । फिर ऐसे ही कुशावर्त घाट ( बम्बई घाट ) पश्चिम की टट्टियों तक बना याने छुड़े पत्थर की चूने से दीवार सीमेन्ट के ब्लाक डाले ।

वि० सं० १९९१ में छोटे साधुबेला में विष्णुघाट के ऊपर नल की हौद्री सीमेन्ट पलस्तर बना और ब्रह्माघाट मकान के ऊपर कंकरीट सीमेन्ट पलस्तर ईंटों की छोटी बट चौगिर्द बनी।

वि० सं० १९९१ पौष वदी में कुबेरघाट से लेकर राज्यघाट तक पाँच रद्दे सिन्धी पत्थर की दीवार नवीं तथा कुबेरघाट के पश्चिम दिशा तरफ का थल्ला आधा रहा हुआ बना तथा राज घाट की बड़ी नवीं पौढ़ी का आधा काम बना। वि० सं० १९९१ में दुःखभंजनीघाट का जल में लोहे का बड़ा फाटक तथा हरिद्वार-घाट से लेकर वरुणघाट तक नवे डंगे पर सिन्धी पत्थर की कुर्सी बनी तथा हरिद्वारघाट के अम्ब्र से लेकर नीम के वृत्त तक नवे डंगे में थल्ला सिन्धी पत्थर का तीन रद्दों से बनकर नींव पड़ी तथा दिन की डेगड़ी भंडार-पुराना फुलके बनाने के भण्डार में सीमेन्ट बजरी दरया की रेती मसाले का पक्का फर्श लगा।

वि० सं० १९९२ पौष में कुबेरघाट से लेकर राजघाट तक (वि० सं० १९९१ के डंगे पाँच रद्दे बनाए पर) डंगा उसारा गया। १९९२ चैत्र वदी १९९३ की सुदी में राजघाट की पौढ़ी पर पौढ़ी वनती रही। पौढ़ी के तले नीचे पहाड़ी से लेकर ऊपर तक छुड़े पत्थर चूने गच्च से भरती होती गई। पौढ़ी बनती गई तथा रेलों की लीहां लगीं, आषाढ़ वदी १ तक तैयार हुआ। १९९२ फाग में भैरवघाट के ऊपर दोनों तरफ अगाड़ी पिछाड़ी में पौढ़ी लगी तथा भैरवघाट से यमघाट तक और भैरवघाट से त्रिवेणीघाट तक लोहे की रेलां ऊँची और लम्बी बनी तथा कुबेरघाट से लेकर त्रिवेणीघाट तक नवें कुण्डे बनवाकर लगवाए वि० सं० १९९२ में खूहे के पास का छप्पर बना तथा खड्जी बाजार की गुफा बनी।

वि० सं० १९९३ में श्री १००८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र जी के झण्डे की थल्ली की मरम्मत हुई तथा चूना लगा। जो झण्डे का

पूजन भाद्रों शुक्ल ६ को प्रति वर्ष श्री ११८० जगद्गुरु श्री चन्द्र जी के जन्मोत्सव पर होता है।

वि० सं० १६६३ में बड़ी नाली ईंटों की ईंटों के साथ साथ बनी जिसमें कूआँ और भण्डार का पानी जाकर नदी में गिरता है।

वि० सं० १६६३ में चटनी वाले थल्ले से लेकर लांढ़ी बँगला की पौढ़ियों के ऊपर पुल बना।

वि० सं० १६६३ में गणेशघाट के नीचे बेट की जमीन पर सीढ़ियाँ बनी जो बेट महन्त साहब श्री साधुबेला तीर्थ का है।

वि० सं० १६९३ में रामझरोखे के पश्चिम वाली लांढ़ी के पूर्व दिशा तरफ लोहे का कटहरा बना तथा रंग लगा।

वि० सं० १६९३ में श्री साधुबेलातीर्थ के पत्तण पर ६० फुट लम्बी २४ फुट चौड़ी सीढ़ियाँ सिन्धी पत्थर की बनाई गई तथा नौकाओं के बाँधने वास्ते लोहे के कुण्डे लगाए गए।

वि० सं० १६९३-९४ में ऋषिकेश में सड़क की तरफ बड़ा हाल तथा बड़े फाटक के साथ वाली कोठी बनी।

वि० सं० १९९३-९४ में हनुमान जी के मन्दिर के पश्चिम दिशा तर्फ खज्जी बाजार की पुरानी कच्ची कुटियाएँ गिरा कर सिन्धी पत्थर की नई कुटियाएँ बनीं, जिसकी नीव खोदने पर ५ फुट पर पहाड़ी मिली। गुफा में नीचे तीन कुटियाएँ और ऊपर दो कुटियाएँ बाहर बराण्डा सहित बनी। रामझरोखे के पश्चिम वाली लांढ़ी के उत्तर दिशा तरफ अस्पताल वाली तथा उससे ऊपर वाली कुटिया भी सीढ़ियों सहित इसी वर्ष में बनी।



वि० सं० १९९४ में ऋषिकेश में सड़क के किनारे बड़े हाल
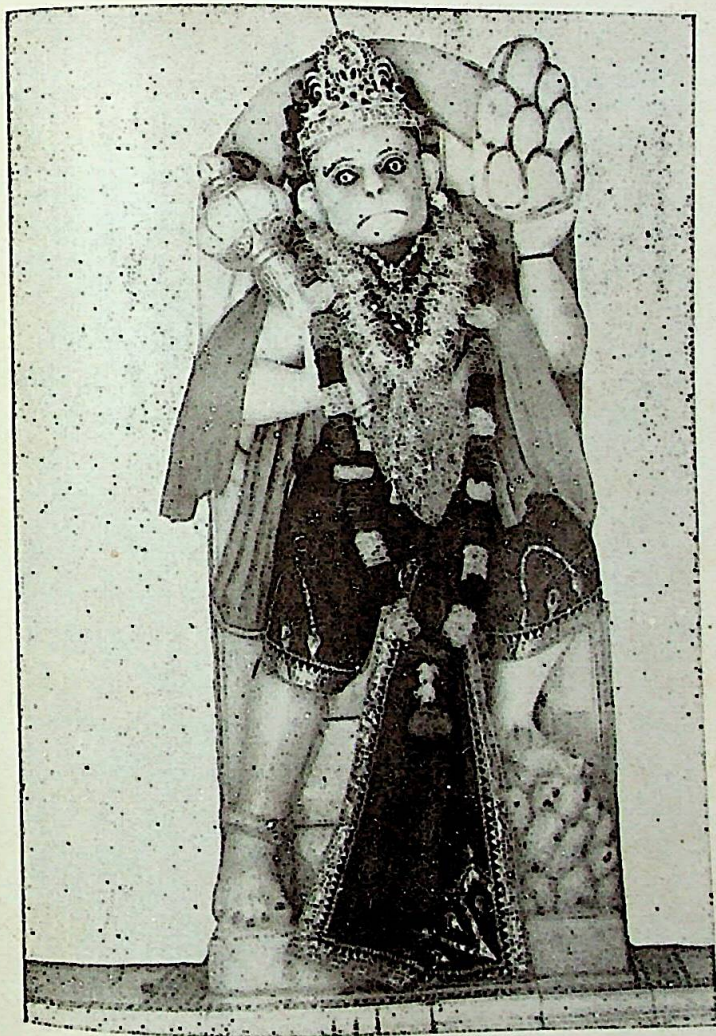
रामझरोखे के सामने मूर्ति श्री हनुमान जी

के बाहर २१५ फुट लम्बा ४ फुट चौड़ा ३॥ फुट ऊँचा ईंटों का थल्ला बना।

वि० सं० १९९४ में गऊघाट से लेकर कृष्णघाट तक नीचे जो श्री साधुबेलातीर्थ का बेटा था उस पर १२ फुट चौड़ा थल्ला बनने लगा। वि० सं० १९९५-९६-९७-९९ में भी यही थल्ला ऊँचा किया गया तथा इसकी मरम्मत भी हुई।

वि० सं० १९९५ में कुबेरघाट के पास वाली सङ्गमरमर की छतरी की नींव छुड़े सिन्धी पत्थर की पड़ी। वि० सं० १९९६ में सङ्गमरमर का काम प्रारम्भ हुआ जो धीरे धीरे होता रहा ऊपर सीमेन्ट की छत पड़ी और घड़ियाल की जगह बनी। वि० सं० २००० में सारा काम सीढ़ियों सहित बनकर तैयार हो गया।

वि० सं० १९९६ में तपोवन में बड़े दरवाजे के दाहिने तरफ बड़ा दालान गार्डर टीआयरन वाला बना तथा और भी रेजकी मरम्मतें हुई वि० सं० २००२ तथा २००३ में भी मरम्मतें हुईं।

वि० सं० १९९७ में हनूमान मन्दिर के पीछे पक्की ईंटों का कमरा बनकर तैयार हो गया वि० सं० १९९७ हनूमान जी, का पुराना मन्दिर गिरा कर नया मन्दिर परिक्रमा सहित बनाया गया। वि० सं० २००० में इस मन्दिर में टाइल्स लगा। वि० सं० १९९७ में गणेश जी का पुराना मन्दिर गिराकर उसकी जगह नया मन्दिर परिक्रमा सहित बनाया गया। वि० सं० १९९९ में इस मन्दिर में टाइल्स लगा। वि० सं० १९९७ में सत्यनारायण जी के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया और ऊपर पक्की ईंटों का एक कमरा तथा दो कुटियाएँ नई बनी। वि० सं० १९९७ में तपोवन में दर्शनी दरवाजे के सामने सीमेंन्ट का फर्श लगा। वि० सं० १९९७ में हरिद्वारघाट के पिछले बुर्ज पर पहले

जो मट ( जल आश्राम ) था उसमें चार गार्डर लगा कर बढ़ाया गया।

वि० सं० १६९८ में सद्गुरु बनखण्डी मन्दिर के अन्दर मूर्ति वाली कुटिया में चाँदी की पुरानी चौखाट जो खराब हो गई थी वह निकाल कर दूसरी चाँदी वाली चौखाट बनी।

वि० सं० १९६९ में रामझरोखे के पश्चिम तर्फ वाली लाढ़ी के पश्चिम सिन्धी पत्थर को चार कुटियाएँ बन कर तैयार हो गईं। वि० सं० १९६९ में कुञ्जगली के पूर्व तरफ दो कुटियाएँ जिनको अम्ब कुटिया कहते हैं वह बननी प्रारम्भ हुई और वि० सं० २००१ में बनकर तैयार हो गई।

वि० सं० १९६६ में रामझरोखे के पास वाली लांढी के नीचे वाली चारों कुटियाओं की पश्चिम तरफ वाली छोटी खिड़कियाँ को निकाल कर बड़े दरवाजे किए गए।

मिती ज्येष्ठ सुदी ४ सोमवार वि० सं० २००० को गणेशजी की नवीन संगमरमर की मूर्ति स्थापित की गई पुरानी मूर्ति भी उसी के दाहिने तरफ भीत में लगाई गई।

वि० सं० २००० पौष वदी १२ शुक्रवार को हनूमानजी की नवीन संगमरमर की मूर्ति स्थापित की गई, पुरानी मूर्ति भी उसी के दाहिने तरफ भीत में लगाई गई।

वि० सं० २०००,२००१ तथा२००२ में श्री साधुबेला तीर्थ के चौतर्फ डंगा ३-३ सिन्धी पत्थर चढ़ाकर ऊँचा किया गया। बाढ़ के समय दरया का पानी जो अन्दर आ जाता था वह रुक गया।

वि० सं० २००० से २००२ तक गीता भवन का सारा काम तथा उसके चारो तरफ सीमेन्ट का फर्श सहित बनकर तैयार हो गया।

वि० सं० २००१ में वर्तन मलने वाली कुटिया जहाँ पर ब्रह्म फुलका बनता है उसकी पुरानी छत निकाल कर नवी छत गार्डर पाकर बनी उसके ऊपर दाल वाली कुटिया भी इसी वर्ष में बनी जिसमें हवा वास्ते मग बना।

वि० सं० २००१ आषाढ़ सुदी १५ को सगुदुरु बनखण्डी मन्दिर में श्री १००८ निरंकारी सद्गुरु बनखण्डी जी की संगमरमर की मूर्ति पधराई गई जिसका सिंहासन भी संगमरमर का बना।

वि० सं० २००१ में कुञ्जगली का पुराना सिन्धी पत्थर का फर्श निकाल कर नया सीमेन्ट का बना तथा पुरानी ईंटों के थमलों का जीर्णोद्धार हुआ।

वि० सं० २००१ में फुलका भंडार के पूर्व की दीवार जो गणेश मन्दिर के उत्तर दिशा की तरफ है वह पुरानी कच्ची गिराकर पक्की ईंटों की बनी।

वि० सं० २००२ से सरस्वतीघाट पर सरस्वती भवन बनना प्रारम्भ हुआ। वि० सं० २००४ में बन कर तैयर हो गया।

वि० सं० २००२ में रामघाट पर सिन्धी पत्थर का फर्श लगा या गया तथा पीपल के वृक्ष के चारों ओर सीमेन्ट की कुर्सी बनी।

वि० सम्वत् २००२ तथा २००३ में गद्दी साहब वाले सभा-मंडल का जीर्णोद्धार हुआ जिसकी छत में चिरौली का रासडल लगा तथा कोठार की दीवार पर गद्दी के सामने श्री साधुबेला-तीर्थ के गद्दी धरों की रंगीन मूर्तियाँ बनी। संगमरमर का पुराना फर्श निकालकर दुबारा नया संगमरमर का फर्श लगा।

वि० सं० २००२ तथा २००३ में रामघाट तथा कृष्ण गाट के बीच में दरया में डंगा उठाकर ऊपर पक्की ईंटों की टट्टियाँ बनी।

वि० सं० २००२ से सरस्वती घाट के पूर्व तरफ धूनी की जगह का काम प्रारम्भ हुआ और वि० सं० २००३ में बनकर तैयार हो गया।

वि० सं० २००३ में कोठार का तथा देवी के मंदिर की जगह का जीर्णोद्धार हुआ। सङ्गमरमर का पुराना फर्श निकाल कर दुबारा नया सङ्गमरमर का फर्श लगा। फाल्गुन सुदी ८ शुक्र- वि सं० २००३ को देवी की नवीन संगमरमर की मूर्ति पधराई गई पास में पुरानी मूर्ति भी है।

वि० सं० २००३ से हरद्वार घाट तथा गणेश घाट बीच में वेद भवन बनने का काम प्रारम्भ हुआ। वि० सं० २००३ से कुबेरघाट पर पक्की ईंटों का छपरा तथा ऊपर का कमरा बनना प्रारम्भ हुआ।

वि० सं० २००३ में साधुओं के बेठने की पंगत में फर्श सीमेन्ट का लगा। वि० सं० २००३ में कुशावर्त घाट और सरस्वती घाट से बीच में सिन्धी पत्थर की आठ कुटिएँ सीमेन्ट के साथ जोड़कर साधुओं के निवासार्थ बनी।

# श्री बाबा हरीदास जी

आपका जन्म वि० सं १६२४ मघर वदी ८ को देहली शहर में गौड़ ब्राह्मण के घर का था जन्म का नाम गोपाल शर्मा था। पिता का नाम श्रीमान् पं० मोहन लाल शर्मा और माता का नाम श्रीमती हर देवी था। आपके पूर्वज बड़े भारी शिव भक्ताथे जिनका बनाया हुआ शिव मंदिर देहली शहर में श्री यमुना जी के किनारे पर कुशियाघाट पर आज तक विद्यमान है। यह अपने माता पिता के एकलोते पुत्र थे और तीन वर्ष की अवस्था में माता पिता स्व- र्गलोग पधारने पर यह देहली शहर में अपने मामा के घर रहते

थे। योग्य अवस्था में मामा जी ने इनका यज्ञोपवीत संस्कार करा कर वेदाध्ययन कराना प्रारम्भ किया। मामा जी के कोई सन्तान न थी इसलिए इनको ही अपना पुत्र समझने लगे और ठीक-ठीक यह उनको अपने पुत्र जैसे ही प्रिय थे। वह वृद्ध हो गए थे इस लिये अपने भाग्नेय पुत्र का जीते ही लग्न देखने की उनकी बड़ी इच्छा थी इसलिये ९ वर्ष को अवस्था में ही विवाह करा दिया लेकिन हमारे भावी कुठारी जी अपने पढ़ने में होशियार रहते थे। मामा जी ने फिर विचार किया अगर संस्कृत और हिंदी के साथ इनको उर्दू और अँग्रेजी की शिक्षा भी दिलाई जाय तो इनकी भविष्यत् उन्नति में सुविधा होगी। यह निश्चय कर उनको स्कूल में बिठाया गया जहां उर्दू और अँग्रेजी पढ़ते रहे। होनहार पुरुष बाल अवस्था से ही जाने जाते हैं इसी रीति अनुसार श्रीमान् गोपाल शर्मा भी बाल अवस्था से ही भगवद्भक्ति और परमार्थ में दृष्टि रखते थे और अपना बहुत सा समय साधु सेवा और सत्संग में व्यतीत करते थे। यद्यपि इनके मामा जी और पिता जी इनके ऐसे व्यवहार से अप्रसन्न रहते थे तो भी इन्होंने अपना स्वभाव नहीं छोड़ा और साधु समागम में दिन प्रति दिन अधिक ध्यान देने लगे। बहुत काल तक सत्संग करने से उनको गृहस्थाश्रम उपाधि रूप भासने लगा। किसी समय में एक ब्रह्मज्ञानी महात्मा का समागम हुआ जिनके सत्संग से उनको बहुत लाभ पहुँचा जो शङ्काएँ इनके चित्त में थीं उनका पूर्णतया समाधान हो गया। कई दिनों तक कई वैराग्यवान महात्माओं के सत्संग से माता, पिता स्त्री आदिकों से चित्त हट तो गया ही था अतः वह गृह कुटुम्ब रूपी पिंजड़े से उड़ने का विचार करने लगे। अब उनको अपने पिता और अपने पालनपोषण करने की चिन्ता लगी। कुछ विचार के बाद उनको भर्तृहरि जी का यह पद फुर आया कि—

"का चिन्ता मम जीवने यदि हरि विंश्वम्भरो गीयते"

अर्थात् यदि हरि परमात्मा विश्म्भर कहा गया है तो मेरे जीवन की क्या चिन्ता है। जहाँ इतनी सारी विश्व की पालना होती है वहाँ क्या हमारे पिता, स्त्री और मैं ही रह जायँगे, यह कभी नहीं हो सकता। कभी भी, कहाँ भी और कैसे भी रहें तो हमारी पालना अवश्य होनी है। ऐसी मन में ठानकर वे १६ वर्ष की अवस्था में अपने सारे गृह परिवार का त्यागन कर चल दिए। वि० सं० १६४३ में अलवर आए। वहाँ से जयपुर अजमेर होते हुए पुष्करराज में पदार्पण किया। वहाँ कई दिन रह कर पाली, बालोत्तरा होते हुए धरणीधर की झाड़ी में रहे, वहाँ भी मनोवांच्छित कार्य पूर्ण न होने से गुजरात, ध्रांगध्रा, जोड़ाव होते हुए बम्बई आए फिर द्वारिका गए। यहाँ पर कई रोज ठहरे, पश्चात् बेट में गए। नाव पर बैठकर माण्डवी होते हुए नारायण सरोवर गए वहाँ पर स्नान करके आशापुरी देवी को गए वहाँ से धरणीधर में नाथों के स्थान में कई दिन रहे फिर भुज अंजरा, मालीया, मोरवी, राजकोट, जैतपुर होते हुए गिरनार गए जहाँ हनुमानधारा में रहने लगे वहाँ बहुत काल रहे फिर सुदामापुरी को गए जहाँ से फिर द्वीप बन्दर में आए। वहाँ पर एकयोगीराज नागा बाबा विष्णुभक्त रहते थे, वह बड़े सिद्ध थे। उनके पास जो कोई आता था, उसको वहाँ भोजन के लिए एक मुट्ठी भर चावल मिलते थे जिनको पकाकर खाने से एक मनुष्य तृप्त हो जाता था। उनके पास बाबा हरीदास जी बहुत दिन रह कर भक्ति योग सीखते रहे। वहाँ से फिर खम्भात, भड़ौंच होते हुए बम्बई आए, जहाँ से फिर रामेश्वर को गए। फिर मदुरा, मद्रास मालावार, पद्मनाभ, जनार्दन, छोटे बड़े नारायण और कन्या कुमारी तक गए। यह मालावार की यात्रा महीना भर तक की। कन्या कुमारी से होकर समुद्र के किनारे होते हुए डेढ़ सौ कोस

पैदल चलकर कार्तिकेय स्वामीजी के दर्शन किए। फिर किष्किन्धा पम्पासर होते कोल्हापुर, शोलापुर से बम्बई वि० सं० १९४४ में आए। कुछ दिन रह कर वि० सं० १९४५ में फिर जकाऊ बन्दर जंगवार होते अदन बन्दर गए। जहाँ कहीं जाते वहाँ भक्ति मार्ग का उपदेश देते रहते थे। वहाँ से बम्बई, जामनगर, अंजार होते हुए कराची गए। मस्कत, ग्वादर, चोहादल बन्दर, कीच, मकरान होते हुए कराची बन्दर आए। फिर एक भक्त के आग्रह से लसबेला गए। फिर कीच, मकरान, साताद्वीप हो हवासी बन्दर होते हुए फर खुरासान, खैरान, चारबुरजक वि० सं० १९४६ में जोड़ में सीस्तान और बीच वारान होते हुए फरान गए। वहाँ बाबाजी बहुत ही बीमार हो गए किन्तु १०-१२ साधु साथ में थे अतः बहुत सारे क्लेश का सामना न करना पड़ा। ईश्वर की कृपा के शीघ्र नीरोग हो गए और म्रिसिक नगर में आए। वहाँ से वि० सं० १९४७ चैत्र मास में कन्धार गए। वहाँ चमन से रेल द्वारा शालाबाग, गुलिस्तान, कोसबँगला हरनाई सीवी होते हुए ढ़ाढ़र से शिकारपुर आकर प्राप्त हुए वहाँ से वि० सं० १९४७ में माघ सुदी ५ (बसन्त पंचमी) को श्री साधुबेला तीर्थ में आए। वि० सं० १९४९ में श्री स्वामी जयरामदासजी के साथ हरद्वार महावारुणी पर गए। वि० सं० १९५० श्रावणसुदी १५ को श्री स्वामी हरिनामदास जी के ज्येष्ठ चेला बने और इनकी सब यात्राओं में साथ जाते रहे। बाबा हरीदास जी के चेले अद्वैतानन्द* वि० सं० १९७६ वैशाख सुदी ३ को हुए, दूसरे नम्बर के ज्ञानानन्द वि० सं० १९८२ जेष्ठ सुदी १२ गुरुवार को हुए। वि० सं० १९८८ माघ सुदी १५ सोमवार

*अद्वैतानंद का चेला ईश्वरानन्द वि० सं० १९७६ वैशाष सुदी ३ को हुआ।

दिन महेश्वरानन्द नम्बर तीसरा चेला बना तथा अतरदास जी सादिक चेला बने।

वि० सं० १६६० आश्विन वदी १४ सोमवार बाबा हरीदास के बासदेवानन्द और पीछे दर्शनानन्द चेले बने। दर्शनानन्द का राघवानन्द चेला उसी दिन बना। उसी दिन विष्णु प्रकाश बाबा हरिदास जी का सादिक चेला बना।

बाबा हरीदास जी श्री स्वामी जी के साथ प्रत्येक यात्रा में थे परन्तु त्रिलोकनाथ की यात्रा श्री स्वामी जी के सिवाय गये थे आपके साथ अतरदास जी तथा रोशनलाल थे।

वि० सं० १६६२ भाद्रो सुदी १ गुरुवार सन्ध्या को २ बज कर ५५ मिनट पर श्री साधुबेलातीर्थ में आपका देवलोक हुआ। आप की पूर्ण आयु ६८ वर्ष की थी।

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी हरिनामदास जी नीचे प्रमाण तीर्थ यात्रा पर गये।

वि० सं० १६५० में प्रयागराज के कुम्भ (जब २ कुम्भ तथा अर्द्धकुम्भियों पर जाते रहे तब २ वहाँ पर छावनी डालते रहे) पर गये। ५७-५८ में तीन धामों की यात्रा की। ६० में हरिद्वार के कुम्भ पर ६२ में प्रयागराज के कुम्भ पर द्वितीयवार और काशी से फिर श्री स्वामी बनखण्डी महाराज की आदि तपोभूमि भभट्याई से धूनी साहब का दर्शन कर आए। ६५ में गोदावरी के कुम्भ पर अन्नक्षेत्र भेजा, आप नहीं गए थे। ६६ में हरिद्वार, की अर्द्धकुम्भी और केदारनाथ, बद्रीनाथ आदिकों से होते हुए हरद्वार, देहरादून, मथुरा, वृन्दाबन, गोकुल गए। ६८ में देहली दरबार से प्रयागराज की अर्द्धकुम्भी लखनऊ नैमिषारण्य, मुरादाबाद, रामगंगा हरिद्वार, दोनों जगह स्नान कर अमृतसर आए। ७२ में द्वितीयवार हरिद्वार कुम्भ पर गए और अचिन्तपूर्णी ज्वालामुखी तीन देवियों की यात्रा करते आए। आते-जाते
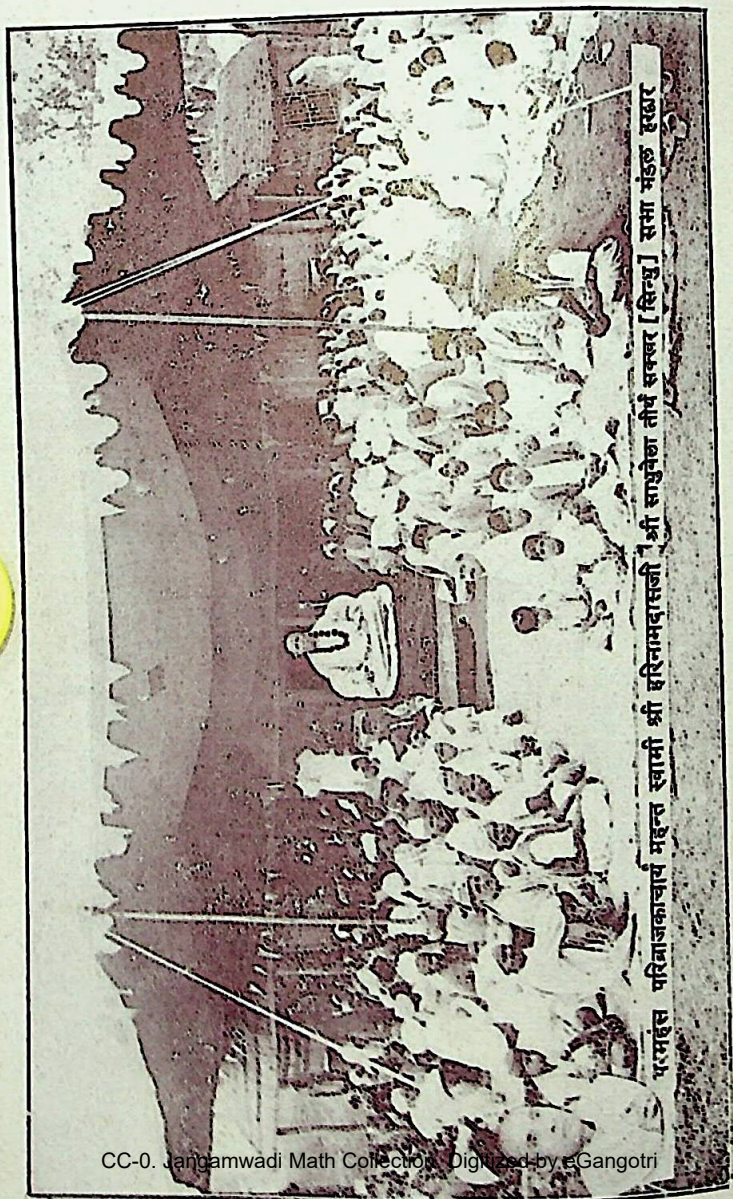
परमहंस परिव्राजकाचार्य महन्त स्वामी श्री हरिनामदासजी श्री साधुबेला तीर्थ सक्खर [सिन्धु] सभा मंडल हरद्वार

अमृतसरहे थे। जहाँ पर लोगों ने बड़ा आदर सत्कार भण्डार भेंट पूजा की थी।

वि० सं० १९७४ में प्रयागराज कुम्भ करके पटना, हरिहर-क्षेत्र, कलकत्ता जगन्नाथ, रामेश्वर के बीच की यात्रा करते बम्बई डाकौर, अहमदाबाद, हैदराबाद सिन्धु में वि० सं० १९७५ जेष्ठ सुदी १४ को श्री साधुबेलातीर्थ में आए। वि० सं० १९७७ आषाढ़, श्रावण, भाद्रों में गोदावरी कुम्भ पर वि० सं० १९७७-७८ माघ, फाल्गुन चैत्र में हरिद्वार की अर्द्धकुम्भी पर अन्नक्षेत्र दोनों जगह भेजा, आप नहीं गए थे। वि० सं० १९८४ फाल्गुन चैत्र हरिद्वार कुम्भ कर ऋषिकेश, देहरादून यमनोत्री गंगोत्री, कर लाहौर से मोटर पर जम्मू, काश्मीर गए यहाँ पर कई दिन विशाल सभा लगा कर हिन्दूधर्म का प्रबल प्रचार करते रहे। अमरनाथकी यात्रा श्रावण सुदी १५ को करी। मुल्तान होते भाद्रों सुदी ७ शनिवार तीर्थ में आए। वि० सं० १९८६ में पौष वदी ७ रविवार को सक्खर से चले, शनिवार पौष वदी १३ को प्रयाग-राज पहुँचे। प्रयागराज कुम्भ मेला करके नैपाल में शिवरात्री कर चित्रकूट होते श्री साधुबेलातीर्थ में उसी साल चैत्र वदी ८ शनिवार आ पहुँचे। वि० सं० १९९० श्रावण वदी २ रविवार को श्री साधुबेलातीर्थ से चलकर मुल्तान अमृतसर हरिद्वार, मेरठ, मथुरा आते जाते, वृन्दवन, आगरा, आगरा से जयपुर, श्रीनाथ कांकरोली, उदयपुर, चित्तौरगढ़, अजमेर पुष्कर जी में सूर्य ग्रहण किया। भाद्रों वदी १५ (अमावस) को फिर वहाँ से आबू होते मारवाड़ जंकशन द्वारा हैदराबाद सिन्ध होते हुए भाद्रों सुदी १४ रविवार वि० सं० १९९० श्री साधुबेलातीर्थ में पहुँचे।

फाल्गुण सुदी ४ वि० सं० १९९४ को श्री साधुबेलातीर्थ से श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री१०८ महन्त स्वामी हरिनामदास जी वि० सं० १९९५ में हरिद्वार कुम्भ के निमित्त अपनी उदसीन

साधु मण्डली सहित चले। पहुँचाने वास्ते सक्खर स्टेशन पर बेअन्त जनता आई थी। मार्ग में अमृतसर, निवासियों ने महाराज को उतार कर जलूस निकाला। दुर्गियाना में महाराज का बड़ा जबरदस्त हिन्दू जाति की उन्नति पर प्रचार हुआ। फाल्गुन सुदी ८ वि० सं० १६६४ को हरिद्वार में पहुँच अपनी छावनी में गए, गंगा स्नान किया तथा व्रत रखा। आज से ही प्रचार कार्य प्रारम्भ हुआ जो नित्य दोनों समय चलता रहा। पंगत भी नित्य लगती रही। इससे पहले अन्न क्षेत्र मधुकड़ी का चलता रहा। चैत्र सुदी १४ को मेष की सन्क्रान्ति (वैशाखी) होने कर कुम्भ महापर्व का स्नान हुआ, पीछे देहरादून गए आगे चकरौता, मंसूरी, होते पुनः देहरादून से रुड़की आए। वहाँ से गढ़मुक्तेश्वर, देहली, कुरुक्षेत्र, पहोवा, शिमला होते लाहौर पहुँचे। यह सब यात्रा हरद्वार से लेकर अपनी मोटर कार में की। मिति वैशाख सुदी १४ वि० सं० १६६५ को रेल द्वारा श्री साधुबेलातीर्थ में अपनी मंडली सहित पहुँच गए। मार्ग में सब जगह आपका स्वागत होता रहा तथा अपनी हिन्दू जाति की उन्नति का प्रचार करते कराते रहे।

मार्ग शीर्ष शुक्ल ५ वि० सं० १६६५ को हैदराबाद (सिन्ध) को स्वामी हरिनामदासजी गए। जहाँ सेठ दौलतराम सेठ आसूसलाणीजी सिन्ध वर्की की नई धर्मशाला का उद्घाटन किया तथा हिन्दू धर्म की उन्नति का प्रचार किया। वहाँ से लौटते ठारूसाह (नवाबशाह) में सनातनधर्म युवक सभा के जलसे में तीन दिन सभापति पद से हिन्दूधर्म का प्रचार करते दाबेजी स्टेशन उतर सिन्ध सङ्गम में स्नान करके लौटकर बदीन से मोटर द्वारा कच्छ देश नारायण सरोवर कोटेश्वर महादेव का दर्शन कर पौष सुदी ३ शनिवार वि० सं० १६६५ को श्री साधुबेलातीर्थ में आ गए। समस्त यात्रा में प्रचार कार्य होता रहा।

पौष सुदी १ शुक्रवार वि० सं० १९९८ को श्री साधुवेलातीर्थ से श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन प्रयागराज के वि०सं० १९९८ वाले कुम्भ वास्ते अपनी साधु मंडली सहित प्रस्थान कर अमृतसर, देहली होते पौष सुदी ५ मंगलवार वि० सं० १९९८ को प्रयागराज पहुँच अपनी छावनी जो भूसी में थी उसमें त्रिवेणी स्नान करते पहुँचे और व्रत रखा। आज से छावनी में पंगत लगने लगी। अन्न क्षेत्र मार्गशीर्ष सुदी १२ वि० सं० १९९८ से ही चलता था। प्रचार हिन्दू जाति के उत्थान का प्रातः सायं दोनों समय अपनी छावनी के विशाल सभामंडप में होता रहा, जिसमें अच्छे अच्छे विद्वान भाषण करते थे। वाचनालय विशाल बनाया गया था साथ ही दो निःशुल्क औषधालय भी थे। प्रयागराज कुम्भ महापर्व कर फाल्गुन कृष्ण १ वि० सं० १९९८ को प्रयागराज से चित्रकूट, बनारस, अयोध्या, लखनऊ, कानपुर होते वृन्दावन आए। वृन्दावन में कुछ दिन निवास कर लौटते मथुरा में विश्रामघाट पर स्नान करते देहली, लाहौर के मार्ग से रेल द्वारा चैत्र वदी १२ वि० सं० १९९८ को रात्रि को श्री साधुवेलातीर्थ में सुखशान्ति से अपनी साधुमंडली सहित वापस आए।

वि० सं० २००१ श्रावण सुदी १५ शुक्रवार को स्वामी हरिनामदासजी उदासीन अपनी बाईं आँख के मोतियाबिन्द का आपरेशन कराने वास्ते रात्रि को १२ बजे वाली गाड़ी से हैदराबाद (सिन्ध), अहमदाबाद होते भाद्रों वदी ५ बुद्धवार को प्रातःकाल १० बजे बम्बई पहुँचे। फिर गोदावरी कुम्भ का स्नान नासिक तथा त्र्यम्बक में किया, देवलाली होते बम्बई लौट आये। फिर भाद्रों सुदी ५ गुरुवार को बाईं आँख के मोतियाबिन्द का आपरेशन हुआ। आँख अच्छी हो जाने पर दीवाली का

महोत्सव कर कार्तिक सुदी ३ शुक्रवार को बम्बई से चल पूना आए। पूना से पंचगनी, महाबलेश्वर हो फिर पूना आए। वहाँ से हुबली, किष्किन्धा, बेलारी, बंगलूर, मैसूर ऊटाकमंड (नीलगिरी) कोयम्बतूर, मंगलौर, कालीकट, कोचीन, अलीपाई, जनार्दन, त्रिवेन्द्रम (पद्मनाभ), नागरकोयल, कन्याकुमारी, सुचिन्द्रम्, छोटेनारायण, तोतादरी, लम्बेनारायण मदुरा में (मीनाक्षीदेवी), अलगर्जीप्यारे, सुन्दरेश्वर महादेव का दर्शन करते धनुषकोटि से जहाज पर चढ़ तालमीनार लंका (Cellon) के बन्दरगाह पर उतरे, वहाँ से रेल द्वारा कोलम्बों गए। वहाँ से कैण्डी नूरेलिया, चिल्लागाल आदि घूमते वापस रामेश्वर आए। रामेश्वर से डंडीगुल, त्रिचनापल्ली में श्रीरंग जी का दर्शन तथा कावेरी गंगा का स्नान किया। त्रिचनापल्ली से चल तंजौर, कुम्भकोणम्, चिदम्बरम्, (नटेश्वर महादेव), ईरोड, सेलम, बेलूर, बालाजी, शिवकांची-विष्णुकांची, पक्षी तीर्थ, मद्रास, बिजवाड़ा में कृष्ण गङ्गा का स्नान, राजमहेन्द्री (गोदावरी का स्नान), जगन्नाथधाम, कलकत्ता, नवद्वीप, वैजनाथधाम, गया, प्रयागराज, लखनऊ, हरिद्वार में कुछ दिन रह यात्रा का पक्का भंडारा साधुओं को दे प्रथम चैत्र वदी ११ वि० सं० २००१ को श्री साधुबेलातीर्थ में सुखशान्ति से पहुँच गए। आप जहाँ जहाँ पर बड़े शहरों में पधारे वहाँ २ के लोगों ने आपका स्वागत किया और यात्रा भर में सर्वत्र अपनी हिन्दू जाति की उन्नति का प्रचार करते कराते रहे। खासकर दक्षिण देश में मातृभाषा हिन्दी विद्या का विशेष प्रचार किया।

तीर्थयात्रा पर जब जब स्वामी जी गए हैं तब तब आपके साथ कई साधु सन्त और गृहस्थी लोग भी जाते रहे हैं और वहाँ अपने भंडारे खोलते रहे हैं। जहाँ अनेक साधु, महात्मा, ब्राह्मण और दर्शनकर्ता गृहस्थी लोग भोजन पाकर तृप्त होते रहे हैं। साधुओं

र ब्राह्मणों को धन, विद्यार्थियों को पुस्तक, वस्त्रहीनों को कपड़े,
वानों को सम्मान, और भेटाएँ देकर अपनी कीर्ति पूर्णमासी के
चन्द्रमा के समान परिव्यापक कर आए हैं अर्थात् फैला आए हैं।
समय समय पर यात्रा में आपको कई जगह मानपत्र मिलते रहे
कई सभाओं के सभापति बने हैं और विद्वान लोग आपकी
स्तुति के श्लोक रच कर अपनी विद्वता से परिचित करते रहे हैं।
उनमें से नमूने के तौर पर सनाढ्य पाठशाला, अस्सी बनारस
आशुकवि श्रीमान् पंडित अयोध्या प्रसाद जी का शतरञ्ज
(चतुरंजन) यहाँ दिया जाता है। जिन्होंने वि० सं० १९७४ के
प्रयागराज के कुम्भ पर भेंट किया था।

## ॥ शत्रुरण जय प्रबन्धः ॥

श्रीमत्सक्खर सिन्ध्वन्तस्साधुबेलां महत्तमाः।
ये वतीर्णा महात्मानो बनखण्डि तपस्विनः ॥१॥
श्री १०८ हरिनामदासाख्य स्वामि नाम्ना महोदयाः।
महत्सुसत्सुविद्वत्सु विजयन्तेच्छदातृषु ॥२॥

अर्थ—श्री १००८ स्वामी बनखण्डी जी महाराज के सक्खर
सिन्धु मध्यवर्ती श्री साधुबेलातीर्थ में जिन्होंने अवतार धारण
किया है, वे श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी महोदय, महात्माओं,
विद्वानों और कल्याणकारकों में जय को प्राप्त हों।

| सा श्रीरस्तां १ | गीस्मामस्थ ६ | मायेशाना ५१ | श्रीवत्साद्या ८ | सुश्रीदात्री ११ | वस्वागारा ६० | श्रीमत्सेव्या ५७ | संवित्पूज्या ५४ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| रामध्याता ५० | साधुप्राप्ता १३ | दावद्रौग्ध्री २ | ध्यानप्राथा ६१ | श्रीहर्षस्था ५२ | स्वामिषिष्टा ५५ | वाहन्धात्री १० | भ्राज द्रूपा ५६ |
| सत्सङ्गस्था ५ | भावेनाप्ता ६४ | ज्ञाती शाना ७ | श्रीखण्डस्थ १२ | वारि प्रीता ९ | ज्ञानाकारा ५८ | सत्सुप्रीता ५३ | रायन्देयात् ५६ |
| वाक्यस्थाया १४ | मालधर्त्री ४६ | वर्णान् पात्री ६२ | दण्डिस्वाप्ता ३ | नानारूपा १६ | नाम्नाज्ञेया ४७ | वासश्रेष्ठा ३६ | शान्तेमग्ना ३१ |
| तारस्यूता ६३ | धामस्वच्छ ४ | नामस्पष्टा १५ | प्रातर्गेया ४८ | धीमत्पूज्या ३५ | वामकृद्धा ३० | वित्सुप्रीता १७ | याच्छस्वच्छा ४६ |
| यासिन्धुस्था २४ | देहस्वृद्धा २१ | स्वाहापूज्या २६ | पापघ्नन्ती ४१ | वेदाधारा ४४ | राहोर्घ्नन्ती ३९ | भाविज्ञात्री ३२ | नादाधारा ३७ |
| सास्वान्तस्था २८ | वित्तन्दात्री ४२ | यात्माच्चेमा २३ | स्वास्विष्टाया: २० | दासान्धात्री २६ | भेदद्रोन्ध्री ३४ | विदज्ज्ञाता ४५ | दातृस्वृद्धा १८ |
| दान्तस्वृद्धा २२ | रामापात्री २५ | दानोन्नेया २८ | सानःपातु ४३ | मुख्यसुप्रेष्ठा ४० | मायाःकर्त्री १६ | भृत्सुज्ञाता ३९ | स्वैशुप्रीयात् ३३ |

शतरंज समझने की रीति—प्रत्येक कोष्ठ का दूसरा अक्षर लिया जाय तो उपरोक्त दो श्लोक वन जायेंगे, छन्द ...प है और इसमें पहले मगण होने से शुभ फलदायक है "मो भूमिः सुख मातनोति" मगण भूमि और सुख देने ...है।

संस्कृतज्ञ भले प्रकार जान सकेंगे कि इस शतरंज का रच- ...कैसे न बुद्धिमान् महापण्डित होंगे। जहाँ ऐसें २ महा- ...न् और कवि लोग जिनकी इस प्रकार से प्रशंसा करते हों वे ...न सर्व साधारण से आदरणीय हों। इससे यह भी ज्ञात ...है कि आप स्वयं विद्वान् हैं और विद्वानों तथा विद्या की ...भी करते हैं तथा विद्योन्नति—कार्यों को यथा शक्ति ...था भी अति प्रेम से देते और दिलवाते रहते हैं।

श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी उदासीन के शिष्यों का ...ण इस प्रकार है:—

(१) श्रीमान् बाबा हरिदास जी—वि० सं० १९५० ...ण शुक्ल १५ प्रातः १० बजे चेले हुए वि० सं० १९६२ भाद्रों ...१ गुरुवार संध्या को २ बजकर ५५ मिनट पर देवलोक ...ए।

(२) बाबा भगवानदास जी—वि० सं० १९५१ श्रावण ...१५ को चेले हुए। वि० सं० १९७७ भाद्रों सुदी १२ ...वार देवलोक हुए। आपकी पूर्ण आयु ६२ वर्ष की थी।

(३) बाबा तरणदास जी—वि० सं० १९५२ वैशाखी के चेला हुए और वि० सं० १९६१ श्रावण वदी १ संध्या ७॥ ...देवलोक हुए। आपकी पूर्ण आयु ४४ वर्ष की थी।

(४) बाबा रामदास जी—वि० सं० १९५२ वैशाखी के चेला हुए और वि० सं० १९७५ कार्तिक वदी ४ को श्री

साधुबेलातीर्थ में देहावसान हुआ। आपकी पूर्ण आयु २८ वर्ष की थी।

(५) बाबा यमुनादास जी—वि० सं० १९५४ आषाढ़ वदी २ को चेला हुए और वि० सं० १९८२ माघ सुदी ७ बुधवार प्रातः काल देवलोक हुए पूर्ण आयु ३३ वर्ष की थी।

(६) बाबा स्वरूप दास जी—वि० सं० १९५४ आषाढ़ वदी २ को चेले हुए।

(७) बाबा जगतदास जी—वि० सं० १९५५ वैशाखी के दिन चेले हुए और वि० सं १९६७ श्रावण वदी १४ गुरुवार को प्रातः काल ४ बजे देवलोक हुए। पूर्ण आयु १९ वर्ष की थी।

(८) बाबा कृपालदास जी—वि० सं० १९५५ वैशाखी के दिन चेले हुए।

(९) बाबा गोविन्ददास जी—वि० सं० १९६३ आश्विन वदी ५ के दिन चेले हुए और देवलोक वि० सं० १९६५ श्रावण सुदी ११ प्रातःकाल ६॥। बजे हुये पूर्ण आयु ५० वर्ष की थी।

(१०) बाबा अमरदास जी—वि० सं० १९६७ माघ वदी १ रविवार के दिन चेले हुए। आपका देवलोक वि० सं० १९९[illegible] फाल्गुन सुदी १२ शनिवार को हैदराबाद सिन्ध में हुआ पूर्ण आयु ५९ वर्ष की थी।

(११) बाबा सुंदरदास जी—वि० सं० १९६८ पौष चन्द्र को चेले हुए और वि० सं० १९६६ ज्येष्ठ सुदी ११ चले गये, पता नहीं।

(१२) बाबा गोपालदास जी—वि० सं० १९६९ पौष सुदी पन्द्र दिन चेले हुए। वि० सं० १९७० में चले गए पता नहीं।

(१३) बाबा गुरुचरणदास जी—वि० सं० १६६५ माघ सुदी ५ (बसन्त पंचमी) को कन्हैयालाल को चेला बनाया नाम गुरुचरणदास रखा। उस समय ३१ वर्ष की अवस्था थी। जन्म सक्खर का है।

(१४) बाबा राम कृष्णदास जी—वि० सं० १६६६ भाद्र पद शुक्ल ६ (गुरु श्री चन्द्र नौमी) को शिवानन्द ब्राह्मण को चेला बनाया नाम रामकृष्णदास रक्खा। उस समय उम्र १८ वर्ष थी, जन्म डुमका (बिहार) का था। मार्गशीर्ष वदी ५ रविवार वि० सं० १९६८ को अमृतसर में देवलोक हुआ। पूर्ण आयु २० वर्ष की थी।

(१५) पं० ब्रह्मदास जी शास्त्री—वि० सं० १९९७ अषाढ़ सुदी ७ गुरुवार को जीवानन्द ब्रह्मचारी को चेला बनाय नाम ब्रह्मदास रखा। यह स्थान में १६ वर्ष रहे तथा संस्कृत पढ़ते रहे। वि० सं० २००० को काशी में वेदान्त शास्त्री हुए। उस समय ३५ वर्ष की अवस्था की यह प्रज्ञाचक्षु हैं जन्म जिला रोहतक का है।

(१६) बाबा गणेशदास जी—वि० सं० १६९७ श्रावण कृष्ण ६ रविबार को ईश्वरदास को चेला बनाय नाम गणेशदास रखा। इस समय उम्र १२ वर्ष की थी। इनका जन्म सक्खर का है।

(१७) बाबा बुधदास जी—वि० सं० १६६७ श्रावण कृष्ण ६ रविवार को कृष्णदास को चेला बनाय नाम बुधदास रखा। इस समय उम्र २० वर्ष की थी। इनका जन्म शिकारपुर का है।

(१८) बाबा बृजमोहनदास जी—वि० सं० १९९८ चैत्र कृष्ण ४ शुक्रवार को वृन्दावन में ऋषिराम ब्राह्मण को चेला बनाय नाम बृजमोहनदास रखा। इस समय उम्र २२ वर्ष की थी। इनका जन्म जिला मेरठ का है।

[१९] बाबा रमेश चरणदास जी—वि० सं० १९९९ आषाढ़ सुदी १५ सोमवार को खूबचन्द को चेला बना कर नाम रमेशचरणदास रखा। इस समय उम्र २० वर्ष की थी। इनका जन्म सक्खर गरीबाबाद का है।

[२०] बाबा बनवारीदास जी—वि० सं० १९९६ माघ सुदी बसन्त पंचमी को कृष्णदास सारस्वत ब्राह्मण को चेला बनाकर नाम बनवारीदास रखा। इस समय उम्र २३ वर्ष की थी, जन्म हरिद्वार का है।

(२१) बाबा हरभजनदास जी—वि० सं० २००१ पौष सुदी १५ शुक्रवार को टीकाराम ब्राह्मण को श्री रामेश्वरजी में चेला बनाय नाम हरभजनदास रखा। इस समय उम्र २२ वर्ष की थी जन्म जिला नैनीताल का है।

[२२] बाबा हरकृष्णदास जी—वि० सं० २००२ माघ सुदी बसन्त पंचमी को नारायणदास को चेला बनाय नाम हरकृष्णदास रखा इनका जन्म हैदराबाद सिन्ध का है इस समय उम्र ५६ वर्ष की थी।

[२३] बाबा रघुबरदास जी—वि० सं० २००२ माघसुदी ५ (बसन्त पञ्चमी) को मोहनदास को चेला बनाय नाम रघुबरदास रखा। इनका जन्म टंडा मोहम्मद खान सिन्ध का है इस समय उम्र ४० वर्ष की थी।

[२४] बाबा हरगोविन्ददास जी—वि० सं० २००३ आषाढ़ वदी १५ को रामानन्द नैष्ठिक ब्रह्मचारी को चेला बनाय नाम हरगोविन्ददास रखा। जन्म सिरसा जिला इलाहाबाद का है। इस समय उम्र १८ वर्ष की थी।

नोट—रोनकीदास, प्रेमदास, ब्रह्मानन्द वृत्ति सादिक शिष्य हुए थे।

परमहंस परिव्राजकाचार्य निरङ्कारी सद्गुरु वनखण्डीजी उदासीन
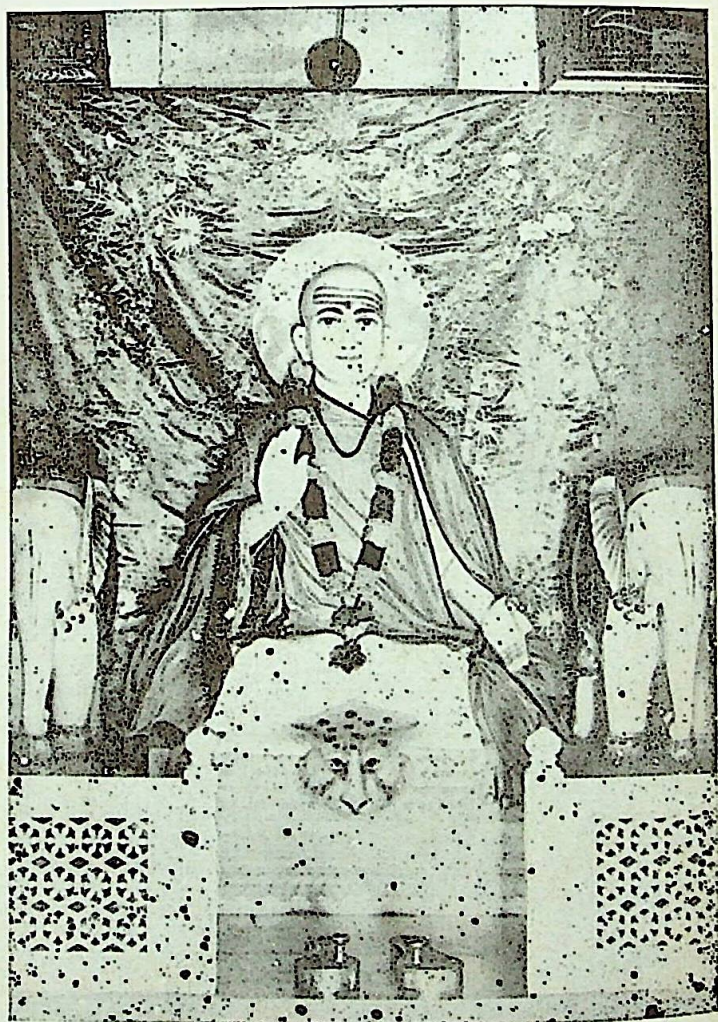
संस्थापक श्री साधुबेला तीर्थ

"आपके राज्य में निम्नलिखित कार्य प्रचलित हैं"

## १—श्रीगुरु वनखण्डी मंदिर

यहाँ वेद और (भगवान् रामचन्द्र की मूर्ति का दर्शन शृङ्गार सजावट अति मनोहारिणी है। अवतारों देवताओं मुनि महात्माओं और ऋषियों के सुन्दर चित्र लगे हुए हैं। ऊपर से झाड़ों को झरमर शोभा भी खूब जगमगा रही है। जिनके ऊपर विचित्र चित्र से चित्रित हैं ' इसको शोभा और मनोहरता को वर्णन करने का इस लेखनी को तो साहस नहीं होता है। जिसके दर्शन करने से आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों ताप दूर हो जाते हैं। भीतर श्री १००८ निरंकारी सद्गुरु वनखण्डी महाराज की संगमरमर को भव्य मूर्ति विराजमान है जिसके सब दरवाजे चाँदी के हैं।

## २—जगद्गुरु श्रीचंद्र मंदिर

यहाँ शिवावतार श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्र उदासीनाचार्य जी की मूर्ति संगमरमर की सुन्दर बड़ी विराजमान है। शृंगार सजावट से शोभायमान है। लोग दर्शन करके हिन्दू उदासीनों के पूर्वजों का स्मरण कर मन में अह्लादित हो श्रद्धा भक्ति,भाव प्रसन्न होने से चरणों में लोट पोट हो जाते हैं। और भी अनेक [illegible] चित्रों सहित शोभायमान हो रहा है। छत में झाड़ फानूसों की झरमर लग रही है। गुरु श्रीचन्द्र जी की मूर्ति आप हँसकर भक्त जनों को हँसाकर तीनों ताप मिटाती आनन्दित कर रही हैं।

## ३—सभामण्डल

यह वह स्थान है जहाँ स्वामी जी के बैठने को २ बट ( बड़ ) पेड़ों के नीचे संगमरमर का सिंहासन बना हुआ है। जब आप गेरुये कपड़ों से आकर विराजमान होते हैं तब ऐसा लगता है मानो लाल सूर्य नारायण संगमरमर रूपी श्वेत किरणायें छोड़

रहा है और दर्शन करने वालों के हृदय पटल के अज्ञान रूपी अँधेरे को दूर कर रहा है। जब यहाँ बैठे कइयों के झगड़े निबटाते और न्याय करते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि महराज विक्रमाजीत जी अपने संगमरमर के सिंहासन पर बैठे हुए हैं। सभामण्डल की छत में रासमण्ड एवं कोठार की दीवर पर गद्दीधरों की मूर्तियाँ शोभा को द्विगुणित कर रही हैं।

## ४—कोठार

सिंहासन के सामने जहाँ देवी का आदि मंदिर है वहाँ पर एक हरड़ का करमण्डल रखा हुआ है जो आदि स्वामी बनखण्डी जी महाराज को देवी अन्नपूर्णा से मिला था। नवरात्रों में इसी करमण्डल की विशेष रीति से पूजा होती है। इस करमंडल का ही प्रभाव है जिससे आज तक इस तीर्थ में जितने भी आदमी आते रहे हैं वह तृप्ति से भोजन पाते हैं। कभी भंडार खुटने वाला नहीं है और आगे भी जब तक लोगों की श्रद्धा बनी रहेगी तब तक सारा दिन अन्नदान चलते रहने की सम्भावना है।

## ५—पुस्तकालय

यहाँ चारों वेद, स्मृतियाँ और १८ पुराणों के सहित वेदांत, न्याय, मीमांसा, योग, सांख्य, ज्योतिष, वैदिकछन्द, काव्य, कोश, साहित्य और नीति के बहुत ग्रन्थ रखे हुए हैं। कई ग्रन्थ तो हाथ के लिखे हैं जो अब तक नहीं छपे।

## ६—वाचनालय

यहाँ भारतवर्ष के कई मासिक पाक्षिक, सप्ताहिक तथा दैनिक पत्र और पत्रिकाएँ हिन्दी, गुरुमुखी, सिन्धी, उर्दू और अँग्रेजी में आती रहती हैं। कोई भी इनको पढ़ कर लाभ उठा सकता है।
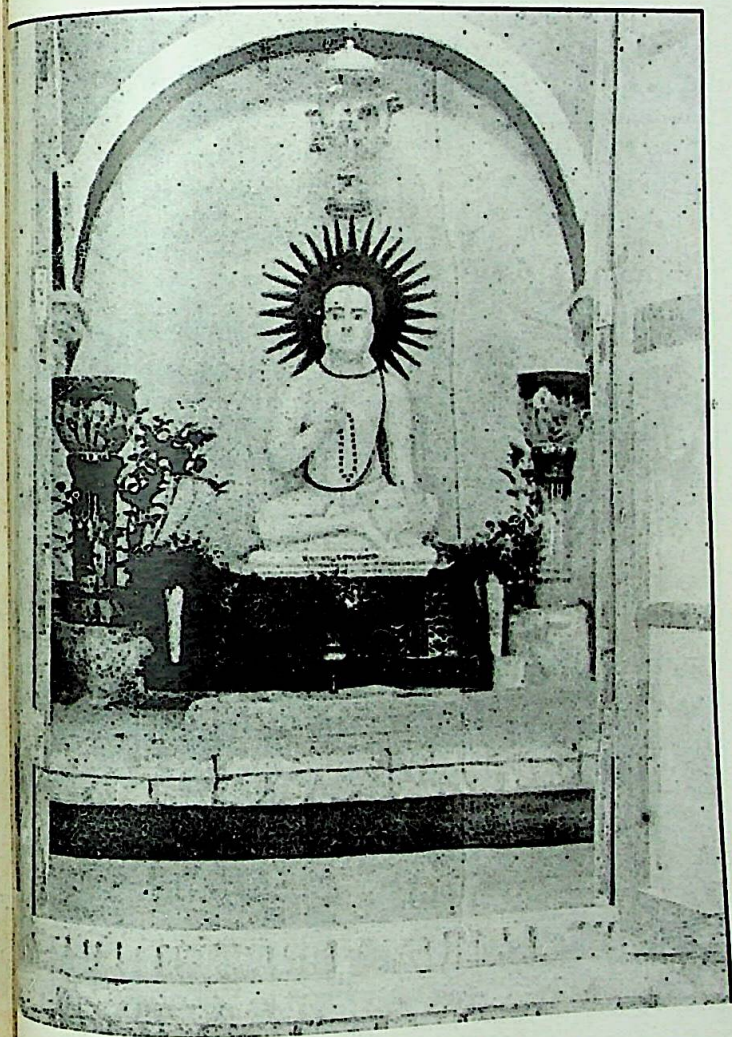
र और श्री १००८ गुरू श्रीचन्द्रजी महाराज उदासीनाचार्य

## ७—रामझरोखा

यहाँ कई कुटियाएँ बनी हुई हैं जहाँ कई देश देशांतरों के साधु आकर निवास करते हैं क्योंकि यहाँ उनको भजन और भोजनकी सुविधा रहती है। आजकल पाखण्ड की अधिकता है और इस कहावत का दिन प्रतिदिन जोर है कि:—

नार मुई घर सपमति नासी। मूँड मुडाय भए सन्यासी

अथवा कई नीच जाति के स्वम्भू साधु बनकर फिरते हैं उनकी यहाँ कलई खुल जाती है और वह रह नहीं सकते। क्योंकि स्वामी जी उनकी पहले परीक्षा कर लेते हैं। जो साधु लोग यहाँ रहते हैं, उनमें से कई विद्याध्ययन में कई भजन पाठ में कई ईश्वर गुणानुवाद में और कई ज्ञानगोष्ठी, ग्रन्थ लेखन तथा शास्त्रार्थ एवं प्रचार कार्य में लगे रहते हैं।

## ८—श्री छोटासाधु बेला

यहाँ सत्यनारायण और शिव का मन्दिर है और कई उदासीन महात्माओं की समाधें बनी हुई हैं आगे गर्मी के दिनों में यह भाग बीच में पानी आने से अलग हो जाता था किन्तु अब पक्की मेंड़ ( सिन्धी पत्थर की दीवारें ) के बँध जाने से यह कष्ट दूर हो गया है।

## ९—श्री गुरु बनखण्डी बाग

यह बगीचा श्री छोटे साधुबेला में है यहाँ कई प्रकार के फल, फूल बूटे और बूटियाँ हैं जिनकी शोभा लिखने से बाहर है। इसी बाग में बिजली की मशीन, पानी की टांकी और तालाब है।

## १०—हवा बन्दर

पूर्व दक्षिण कोने पर किनारे के साथ थोड़ा मैदान है। वहाँ गर्मी के दिनों में बड़ी सुन्दर और स्वच्छ वायु चलती है। बैठने

के लिए संगमरमर की थल्लियाँ लगी हुई है जो बहुत ठंढ़ी रहती हैं।

## ११—शिकारपुर का स्थान ( मठ )

वि० सं० १९५२ से शिकारपुर में भी स्वामी हरिनामदास जी उदासीन का एक स्थान है।

## १२—उत्तरकाशी ज्ञानसू का स्थान [ मठ ]

वि० सं० १९९४ को रामनवमी के दिन उत्तरकाशी ज्ञानसू के अपने मकान में श्री ११०८ श्री चन्द्रभगवान् की मूर्ति श्री स्वामी हरिनामदास जी ने अपनी ओर से स्थापित की।

## १३—माधवबाग

यह स्थान सक्खर नगर में है जहाँ लक्ष्मीनारायण जी का मन्दिर है। यहाँ वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया को सद्गुरु बनखण्डी उदासीन महाविद्यालय की स्थापना हुई जहाँ संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा सिन्धी भाषा पढ़ाई जाती है।

## १४—तपोवन

वि० सं० १९७६ से है सिन्धु गंगा के बायें तट दक्षिण दिशा में यह स्थान तपस्या के योग्य ही है।

## १५—ऋषिकेश

यहाँ कई कुटियाएँ बनी हुई हैं जहाँ श्री साधुबेला तीर्थ के यात्री रह सकते हैं। मेलों में तीर्थ के बाहर वाले यात्रियों को यहाँ रहने का बड़ा सुख है। रहने वाले को स्वामी जी से आज्ञा लेनी पड़ती है यह स्थान सिन्धु गंगा के उत्तर ओर बड़ा ही रमणीक है वि० सं० १९७५ से १९९४ तक सारी कुटियाएँ सड़क के किनारे बड़े हाल सहित बन कर तैयार हो गया।

## मेले

वैसे तो यहाँ सदैव ही मेला लगा रहता है। देश देशांतरों
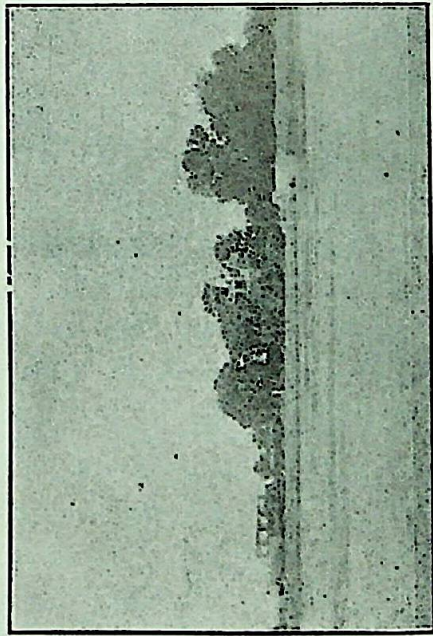
श्रीगुरू वनखण्डी बगीचे में श्री कैलास महादेवजी
मन्दिर संगमरमर का

के यात्री लोग दर्शन करने को आते हैं परन्तु हर एक रविवार को लोग दर्शन करने विशेष आते हैं। भगत लोग आकर हरि कीर्तन करते हैं। सब हिन्दू पर्व और त्योहार बड़ी सजधज से मनाए जाते हैं प्रति आषाढ़ सुदी १५ ( गुरु पूर्णिमा ) को सेवक लोग आकर अपने गुरु महन्त स्वामी हरिनामदास जी की पूजा करते हैं। रामनौमी, जन्माष्टमी और दीवाली देखने योग्य होती है। चैत्री चन्द, वैशाखी और पौष के चन्द्र को लोगों की बड़ी भीड़ रहती है। चैत्र और आश्विन मास के नवरात्रों में दुर्गा देवी के उपलक्ष्य में अष्टमी के दिन कुमारी भोजन होता है। इन दिनों पर बहुत ही बालिकाएँ आकर इकट्ठी होती हैं। बड़ा मेला शिवरात्रि का भी लगता है।

## परोपकार

"परोपकाराय सत्तां विभूतयः"

इस शास्त्रोक्ति को श्री साधुबेलातीर्थ बराबर सार्थक कर रहा हैं जो कुछ यहाँ धन पदार्थ है, वह सब विद्यादान, अन्नदन, सदाचारी भजनशील महात्माओं की रक्षा और स्थान को आदर्श बनाने के लिए व्यय होता है। श्री स्वामी जी से लेकर सब साधु महात्मा केवल रोटी लंगोटी ही ले रहे हैं। मैं नहीं जान सकता कि श्री स्वामी हरिनामदास जी किसी जज से संख्या में कम मुकद्मा फैसला करते होंगे। वह जज लोग तो हजारों रुपया वेतन खाते हैं परन्तु आप निःस्वार्थी बनकर ही कइयों का यह काम करते हैं। इसके अतिरिक्त समय समय पर जो स्थान की ओर उपकार हुआ है वह स्थाली पोलाक न्याय से यहाँ दर्शाते हैं।

वि० सं० १६५३ में बड़ी भारी प्लेग का प्रकोप था। माघ वदी १ से आरम्भ हुआ जो पाँच महीने चला। नवें सक्खर, पुराणे सक्खर और रोहड़ी के सब लोग चले गए थे। उसी

समय श्री साधुबेला तीर्थ में २५० साधु रहते थे उनको यहाँ कुछ भी न मिल सकता था। सूचो बटण तक लाड़काणे और कैटा से मँगाए जाते थे। वि० सं० १९५६ में मारवाड़ और गुजरात में बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा। तीन वर्ष से वृष्टि नहीं हुई थी। पंजाब और सिन्ध में अन्न था तो सही किन्तु बड़ा मँहगा था। इसलिये बहुत से मारवाड़ी सिन्ध में आए। एक हजार मारवाड़ी सक्खर में भी आए जो सब के सब श्री साधुबेलातीर्थ में स्वामी जी की शरण में पड़े। तब श्रीस्वामी हरिनामदास जी उनके ऊपर दया करके छः मास तक भोजन देते रहे। जिस समय वे अपने धन्धे रोजगार को भी लग गए थे अतः फिर भी प्रति रविवार को उनको भोजन मिलता रहा।

वि० सं० १९६४ में डाक्टर रासबिहारी घोष का बिल श्रीमान् वाइसराय की कौंसिल में पेश था। जो मठ मन्दिर धर्म सम्पत्ति पर पेश हुआ था जिसमें बहुत हानि देख कर उसके निषेध में बड़ी दरख्वास्त देकर रद कराया था।

ईसवी सन् १९१९ में वाइसराय की कौंसिल में वर्णसङ्करी पटेल बिल पेश हुआ। जिससे हिन्दूधर्म की बहुत ही हानि होती जानकर श्री स्वामी जी ने एक बड़ी दरख्वास्त अंग्रेजी में छपवाय के इस वर्णनाशक बिल का नाश करने के लिए वाइसराय को भेजी।

यह सब नमूने मात्र संक्षेप से दिखाया गया हैं। बुद्धिमान् लोग इससे ही श्री साधुबेलातीर्थ का महत्व समझ लेंगे। बाकी अविचारवान् केवल अपने हठ पर हैं और व्यर्थ श्री साधुबेला-तीर्थ पर कई प्रकार के कटाक्ष किया करते हैं। उनको समझाने को तो चतुर्मुख ब्रह्मा को भी सामर्थ्य नहीं हैं।

# प्रचार कार्य

वि० सं० १९७८ चैत्र वदी ३-४-५-६ को। सक्खर ऋषिकेश में सिन्धु प्रान्तीय उदासीन कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन कराके हिन्दूजाति को उठाने के लिए साधुओं को प्रेरित किया

वि० सं० १९७९ फाल्गुन वदी १-२-३-४ का कराची में सिन्धु प्रान्तीय उदासीन कान्फ्रेन्स का द्वितीय अधिवेशन आपकी प्रेरणा से बड़ा सुन्दर हुआ।

वि० सं० १९८१ वैशाख वदी ५-७-८ को कम्बर में सिन्धु प्रान्तीय उदासीन कान्फ्रेन्स के सभापति पद से प्रचार किया। वि० सं० १९८१ भाद्रों सुदी ६ ( जगद्गुरु श्रीचन्द्र जयंती दिन ) अखिल भारतवर्षीय श्रीगुरु श्रीचन्द्र उदासीन उपदेशक सभा की स्थापना करके समस्त भारतवर्ष के हिन्दू जाति की उन्नति का प्रचार कर औ करा रहे हैं।

वि० सं० १९८२ वैशाख वदी १-२-३ को नगर ठट्टा में सिन्धु प्रान्तीय उदासीन कांफ्रेन्स का अधिवेशन श्रीस्वामी जी ने प्रेरणा करके करवाया।

वैशाख सुदी १४ वि० सं० १९९२ को गेरेला ग्राम जिला लाड़काणा में सिन्धु प्रांतीय उदासीन कांफ्रेन्स में छठवें अधिवेशन के सभापति पद से प्रचार किया।

आषाढ़ सुदी ६ वि० सं० १९९२ को हैदराबाद सिंधु में सिंधु प्रांतीय उदासीन कांफ्रेन्स के सातवें अधिवेशन के सभापति पद से प्रचार किया।

मार्गशीर्ष सुदी १ वि० सं० १९९२ को सनातनधर्म युवक सभा के सक्खर के वार्षिकोत्सव पर सभापति पद से प्रचार किया।

आश्विन सुदी १३ वि० सं० १९९३ को रोहड़ी के महन्त युगतराम जी उदसीन के ग़द्दी बैठेने के समय प्रचार किया।

वि० सं० १९९० कार्तिक सुदी १५ को गजग्राह का पहला मेला श्री स्वामी जी ने सक्खर में लगवाया और स्वयं नौका द्वारा गए।

वि० सं० १९९३ मघर सुदी १४-१५ तथा पौष वदी १ को "सिंधु कराची मुल्तान गौशाला सम्मेलन" श्री महन्त स्वामी हरिनामदास जी उदासीन के सभापतित्व में वड़े समारोह से हुआ। बाहर से आए हुए सब गौशालाओं के प्रतिनिधियों-पण्डितों, भजनीकों के खाने पीने का प्रबन्ध श्री साधुवेलातीर्थ की तरफ से हुआ और रहने का प्रवंध ऋषिकेश सक्खर में किया गया था।

आश्विन वदी ६ वि० सं० १९९५ को गरीवाबाद (सक्खर) में सनातन धर्म सभा के वार्षिकोत्सव पर सभापति पद से ओजस्वी व्याख्यान दिया।

वि० सं० १९९५, १९९७, १९९८, १९९९ तथा २००२ में सनातन धर्म युवक सभा सक्खर में सभापति पद से हिंदू जाति की उन्नति का प्रचार किया।

वि० सं० १९९९ प्रथम ज्येष्ठ सुदी ६ गुरुवार से श्री साधुबेलातीर्थ में यज्ञ आरम्भ हुआ जिसके लिए बृहत् प्रबंध किया गया था। जिसमें पुरुषोत्तम महायज्ञ, अखण्डयज्ञ, २४ लाख गायत्री का जप, श्रीमद्भागवत का सप्ताह, देवी भागवत शतचण्डी पाठ, रामयण तथा ग्रन्थ साहब का अखण्ड पाठ हुआ। साथ ही सायं तथा प्रातः प्रचार कार्य खूब जोर शोर से होता रहा। विशाल पंगते भी रोज लगती रहीं। प्रथम ज्येष्ठ सुदी १४ शुक्रवार वि० सं० १९९९ को पूर्णाहुति हुई। उस दिन सारा दिन भंडारा चलता रहा।

वि० सं० २००१ वैशाख सुदी ३ ( अक्षय तृतीया ) को अपने स्थान माधवबाग सक्खर में सद्गुरु बनखण्डी उदासीन महाविद्यालय की स्थापना स्वामी हरिनामदास जी उदासीन ने अपने हाथों किया। जिसमें हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा सिंधी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं।

सेठ टी० मोटनदास अपने नवीन बँगले के उद्घाटनार्थ श्री १०८ स्वामी हरिनामदास जी को वैशाख वदी ५ वि० सं० २००३ को कराची ले गया। जहाँ पर १५ दिन तक प्रातः तथा सायंकाल हिंदूधर्म की जागृति वास्ते बृहत् प्रचार हुआ। बड़ा सुन्दर पण्डाल बनाया गया था। लाउडस्पीकर लगाया गया था। वैशाख सुदी ८ वि० सं २००३ को लौट कर श्री साधुबेलातीर्थ में आगए।

इसी प्रकार अनेक सभाओं में तथा कुम्भों पर श्री स्वामी हरिनामदास जी प्रचार करते रहे हैं। वैसे तो श्री साधुबेलातीर्थ में प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल प्रति दिन प्रचार होता रहता है जिसका दिग्दर्शन निमित्त मात्र से यहाँ दिखाया गया है। इनका तो जीवन ही प्रचार मय है सारा प्रचार का वृत्तान्त देने में ग्रंथ का कलेवर बढ़ जाने की आशंका से थोड़ा दिखाया गया है।

जहाँ श्री स्वामी हरिनामदास जी मौखिक व्याख्यानों द्वारा प्रचार करते हैं वहाँ अपनी लेखनी को भी विश्राम नहीं लेने देते। आप एक सफल लेखक हैं, आपकी लिखी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

१—श्री सिंधु सप्तनद गङ्गा माहात्म्य संस्कृत मूल पर हिंदी गुरुमुखी, सिंधी, केनाड़ी अनुवाद।

२—श्री साधुबेलातीर्थ का इतिहास—हिंदी, सिंधी, अंग्रेजी उर्दू चार भाषाओं में।

३—गुरुसाखी सूर्योदय चरितामृत अर्थात् गुरु वनखण्डी योग सिद्धी—हिंदी, सिंधी और अंग्रेजी।

४—विचारमाला तथा जीवन चरित्र स्वामी हरिप्रसाद जी महाराज ( सम्पादन )

५—धन्य सद्गुरु—हिंदी—गुरुमुखी

६—सतिनाम महिमा"

७—गायत्री

८—कृष्ण जी मुरली ( सिंधी )

९—ओरिजन एण्ड ग्रोथ आफ उदासी ( origin and growth of udasis )

१०—प्राचीन मुनियों का पुरुषार्थ।

११—सद्गुरु वनखण्डी चरितामृतम् एवं जीवन चरित्र स्वामी जयरामदास जी—संस्कृत, टीका हिंदी।

१२—गुरु श्रीचन्द्र मात्रा की टीका।

१३—गुरुबनखण्डी जपुजी गुरुमुखी।

१४—जगद्गुरु श्रीचन्द्र चन्द्रोदय नामक विशाल ग्रन्थ संस्कृत श्लोकों तथा भाषा टीका में लिख कर प्रकाशित करने के लिये तैयार है।

१५—गुरु श्रीचन्द्र प्रभाकर ग्रंथ हिन्दी कविता में छपने वास्ते तैयार है। इसी प्रकार अनेकों इश्तहार पैम्फलेट इत्यादि समयानुसार छपवा कर जनता में वितरित करते रहते हैं।

इति श्री मत्सिन्धुवादि सप्तनद मध्यवर्ति श्री साधुबेलातीर्थाधिष्ठातृयोगिराज पूज्यपाद श्री १०८ मत्स्वामि बनखण्डि सिंहासनासीन श्रीमदुदासीनवर्य परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८

त्वामि हरिनामदासञ्ज्ञया कार्ष्णि नारायण दासेन विनिर्मितं
श्रीसाधुबेलातीर्थेतिहास समाप्तम् ।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वेभद्राणि पश्यतु
सर्वः सुखमवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु

हरि ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिस्तुष्टि : पुष्टिश्चास्तु

## "श्री गुरु बनखण्ड समज्ञा"

श्री मान् पं० तेजोभानु शर्माविरचिता

यशो निधेर्यस्य परां समज्ञामियत्तया कीर्तयितुं प्रवृत्ता ।
मनीषिणां संचकिता मनीषा नमामि तं श्री बनखण्डदेवम् ॥१॥
मुनीर्महीयान् महतां महस्वी सर्वं सहोधर्मधनस्तपस्वी ।
वाचं यमस्सत्यरतो यशस्वी सोऽयं नमः स्वीकुरुतां मनस्वी ॥२॥
तत्वप्रसंख्या न कृतांधुरीणाः वन्दारु विद्वज्जवृन्दवन्धुः ।
नः पातुपापात् पतितान् भवाब्धौ मानायमानेषु सदासमानः ॥३॥
औदास्यमाश्रित्य गुणान्व्युदस्य यः साधुतांसार्थकतामनैषीत् ।
श्रीचन्द्रपादाम्बुजचञ्चरीकः तापार्तिपूर्णान् परितः पिपर्त ॥४॥
स्वाध्याय याथार्थ्य विचारदक्षः गृहीतसाष्ठांगसुयोगपक्षः ।
कांतार देशे जलवायुभक्षः श्रीयं स दिशयाद् विगलद्विपक्षः ॥५॥
ध्याने प्रवीणः स्मरणे नवीनो भोगेष्वदीनो गुरुपादलीनः ।
पापैर्विहीनोहरितोयमीनो भूयादद्दयीनः प्रतिसात्मनीनः ॥६॥
मनोविजेतादुरिताऽपनेता वेत्ता ऽऽगमानांयशसांनिचेता ।
दिशांविनेतायतिवृन्दनेता चतःप्रसीदेत् स पवित्रवेताः ॥७॥
येशामनेहागतकामनेहा निर्गज्ञानन्दनदेनिमग्नः ।
कल्पान्तमाविष्कृतपौरुषाणां तेषांनुतिर्नोनितरांपुनातु ॥८॥
येषांपवित्रैरमितश्चरित्रैः परिष्कृतास्सन्तिदिशश्चतस्रः ।
समानभावेनविभूतिभाजां तेषांस्तवोऽस्तदवृजिनंजुनातु ॥९॥

जिघ्रन्तियस्यांघ्रिसरोजगन्धं कुलाग्रगंरयस्यसदाकुलीनाः ।
महानुभावस्यमहोदयाश्च तस्मैनमः श्रीबनखण्डिनेऽस्तु ॥१०॥
सुदुर्गमेसस्तनदांतराले संस्थापयामास महामठंयः ।
आवालगोपालजनप्रसिद्धं तस्मैनमः श्रीबनखण्डिनेऽस्तु ॥११॥
यः साधुबेलाऽभिधपुण्यतीर्थे चक्रे स्थितिंशिष्यपरम्पराणाम् ।
निष्कांक्षितानांधुरिपारिकांक्षी तस्मै नमः श्री बनखण्डिनेऽस्तु ॥१२॥
आसिन्धुदेसादपि सिन्धुदेशा दारभ्य सर्वेदिशि दक्षिणस्यां ।
यदा श्रमं जानपदानमन्ति तस्मैनमः श्री बनखण्डिनेऽस्तु ॥१३॥
ताः सिद्धयोयस्यपुरः सफुरन्ति भ्रू संज्ञयासूचित कार्ययताः ।
नारायणप्रेमपरायणस्य तस्मैनमः श्री बनखण्डिनेऽस्तु ॥१४॥
मन्यामहेधन्यतरान्नरांस्तान् तद्दर्शनस्पर्श सेवनाद्यैः ।
संमान यन्तिस्मसमाःक्षणेन तेभ्यो वटुभ्यो नतयः पटुभ्यः ॥१५॥
सद्भ्योमहद्भ्यः प्रतिमान वदमयः सदासदाचार विचार कृदम्यः ।
आचार्यवर्योदितरीतिविद्भ्यो नमोनमस्स्यातूसुतरांवृहद्भ्य ॥१६॥
येये क्रमादाश्रम पादपीठं विभूषयन्ति स्म निजासनेन ।
हंसावतंसेषुगतेषरोषु नमस्कृतिस्तेषुयतीश्वरेषु ॥१७॥
कंकंणंस्तौतुगुणालयाना मनन्तशकत्यासम लंकृतानां ।
इत्येवमत्वा कवितेजभानुः स्तुतिंसमाप्तेर्वशमानिनाय ॥१८॥
इमामधीयन्स्तुतिमादरेण भोगाभिलाषी भवमुक्तिमीयात् ।
मोक्षाभिलाषी भवमुक्तिमीयात् सर्वाभिलाषीखलुसर्व मीयात् ॥१९॥

—o—

## "श्री स्वामि हरिनामदासाष्टकम्"

श्रीमान पं० तेजोभानुशर्म्माविरचितम्

क्रमागतं श्रीबनखण्डदेव सिंहासनासीन महिनसत्वम् ।
महोज्वलं श्रीहरिनामदासं नमाम्युदासीनमत प्रधानम् ॥१॥

उदारमाहारमुदारचेता गङ्गादिकुम्भोत्सव साधु सङ्घे ।
विश्राणयामासदिवानिशंयो नतःस्मतं श्री हरिनामदासम् ॥२॥
ब्रह्मण्यतायत्रशरण्यतांवा कर्मण्यताधर्म वरेण्यताच ।
गणागुणानाम मितावसन्ति धन्यः सदासाधुषुकस्तदन्यः ॥३॥
स्थानाधिपास्सन्तु परश्शताये कार्पण्यदोषे नयुताइतास्ते ।
स्थानाधिपत्यंतदमुष्यमन्ये महाबदान्यः किलयस्समान्यः ॥४॥
व्यङ्गेषुरुग्णेष्वथ दुर्गतेषु विद्याविनीतेषुयथाधिकारम् ।
वस्त्राण्यमत्राणि चपुस्तकानि विभक्तुवान् यः स संदानमस्यः॥५॥
गीता निपीता नितरामनेन नाम्नांसहस्रं पठितंत्वजस्रम् ।
मर्यादयापूरुष सत्तमोऽयं सद्भिर्महद्भिः परिवन्दनीयः ॥६॥
विद्यांमतिं नामविभर्तिविद्वान् ज्योत्स्नांवाहिमांशुविम्वम् ।
रत्नानितायानि च निम्नगेशः कीर्तिंदयांचैवतथामहात्मा ॥७॥
संख्यावतांदूरदृशांमहीयान् स्वसंप्रदाय स्य सतांगरीयान् ।
स्वभावसौजन्यगिरामृदीयान् प्रसन्नतामेतुनतैर्वशीयान् ॥८॥
इत्यष्टकं श्रीहरिनामदास यतीन्द्रवर्यस्यमहत्वभाजः ।
श्री साधुबेलापदमास्थितस्य श्रवन्पठन् भद्रयुतोनरः स्यात् ॥९॥

---

वित्तव्यये मुक्तकराय तस्मै भण्डारिणे श्रीगुरुसेवकाय ।
प्रशंसनीयाय विचक्षणाय नमो नमो मे हरिदास नाम्ने ॥
"ॐ तत्सत्ब्रह्मार्पणमस्तु"

—०—

श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य्याणां श्री १०८ मतां हरिनामदास
स्वामिनांकर कमलयोः श्रद्धांजलिः

—०—

सविश्वविज्ञापित सप्त तीर्थे श्रीसाधुबेला विषये निषण्णः ।
स्वपक्षसंरक्षण दीक्षितात्मा जीयाच्चिरं श्री हरिनामदासः ॥१॥

मुखं प्रसन्नं विमले च नेत्रे शान्तोऽन्तरात्मा मधुरा च वाणी ।
यच्चिह्नमेतत् स चिराय जीयात् श्रीमान् महात्मा हरिनामदासः ॥२॥
वैदेशिकैर्दस्युगणैः कराले र्महापिपासाकुलितान्तरालैः ।
त्रस्तस्य देशस्य शुभाभिलाषी जीयाच्चिरं श्रीहरिनामदासः ॥३॥
कल्याणकारी सचराचरस्य लोकस्य दावानलमध्यगस्य ।
भूयाच्चिरायुर्महतो महीयान् श्रीमान् महात्मा हरिनामदासः ॥४॥
विशाल विटपावली वलयिते ऽधिसिन्धुस्थले,
यदीयमिदमाश्रमं प्रथित मस्ति भूमण्डले ।
यशोविजितशारदीय शशिरेष विद्यव्रती
स साधुजन शोभितो जयति कोऽपि वृद्धो यती ॥५॥

विनीतस्य
वैद्यनाथ मिश्रस्य (साहित्याचार्यस्य
मु० तरौनी, पो० साकरी
जि० दरभङ्गा (विहार)

## 'ओम् श्री ११०८ जगद्गुरु श्रीचन्द्राय नमः'

साधूनाञ्च शिरोमणि गिरवरे पूर्णो गुणैः सर्वथा ।
स्थित्वा श्री बनखण्डिनश्चयतिनः पूज्येशुभेचासने ॥
लोकान्साधुजनांश्च स्वीयमधुरै र्वाक्यैश्च सन्तर्पयन ।
दृष्टः श्री हरिनामदास प्रवरो विद्यार्थि नामर्थदः ॥१॥
विद्वज्जनाचार विचारसक्तो विद्याप्रचाराय सदानुरक्तः ।
स्वधानुरूपै र्वचनैः स्वकीयैः दत्वा सुशिक्षां भुविवर्त्ततेयः ॥२॥
सिंधुं स्वकीयेन यशश्चयेन सन्धायन्र्वंश यथा गतेन ।
प्रख्यात सिद्धिर्जित वासनोवै दृष्टोमया श्री हरिनामदासः ॥३॥
देशान्तरेषु प्रथित प्रसिद्धि नीरान्तरेऽद्रेः शिखरे सुरम्ये ।
अत्यर्थ कान्तं भुवि कल्पतरो दृष्टोमया श्री हरिनामदासः ॥४॥

सुज्ञो मन्त्रिवरो यस्य लोकाना मनरंजकः ।
दृष्टाः श्री हरिदासश्च स्थान शोभा विवर्द्धकः ॥५॥

इति श्रीस्वामी हरिनामदासजी के चरणों में समर्पित पं० तेजभानुशर्मा रावलपिंडी मिती भाद्रों कृष्णा ३० शनि वार वि० सं० १६८४

इसी तरह श्रीमान् पूज्यपाद स्वामी हरिनामदास जी उदासीन कुल कमल दिवाकर को जिन २ सज्जनों ने मानपत्र देकर अपनी वाणी और लेखनी को सफल किया है, उन सज्जन पुरुषों के नाम पाठकों के मनोरञ्जनार्थ संक्षिप्त रूप से नीचे लिखकर सुना देना अत्यन्तावश्यकीय समझता हूँ ।

(१) श्रीमान पं० जोधराजात्मज व्यास मोती लाल शर्मा जैसलमेर निवाशीनंदा द्वारा शिकारपुर सिन्ध वि० सं० १६७२ माघ सुदी ७ बृहस्पतिवार ।

(२) पंचायत नवीं सक्खर तथा सरमालो और पुष्कर्णी सभा और सारस्वतों की पंचायत सबने वि० सं० १६७२ कार्तिक सुदो १३ शनिवार सन्ध्या समय ५॥ वजे सक्खर में दिया ।

(३) श्रीमान् टहिलराम गिरधारीदास सामन्त शिकारपुरी नागदेवी स्ट्रीट बम्बई में वैशाख सुदो ४ मङ्गलवार वि० सं १९७५ ।

(४) श्रीमान् पण्डित हरिदत्तजी शर्मा सेकण्ड पण्डित डी० एम० कालेज बीकानेर ने सेठ गोबर्द्धनदास कपड़ा मारकीट कराची में वि० सं० १९७९ फाल्गुन कृष्ण १० शनिवार ।

(५) श्रीमान् पं० शिवकुमार पं० गगनलालशर्मा सभापति तथा अर्जुनदास जी मन्त्री श्री सनातनधर्म युवक सभा सक्खर में वि० सं० १९८४ भाद्रशुक्ल ७ शनिवार ।

(६) हिन्दू सभा सक्खर की तरफ से, कुम्भ तथा श्री अमरनाथ जी की यात्रा से वापिस होते सक्खर में पधारने पर वि० सं० १९८४ भाद्रशुक्ल ७ शनिवार ।

(७) सर्व सभामण्डल सक्खर सुधारसभा, सुन्दरसभा, सुन्दरसेवक सभा सभामण्डली, देशसेवक मण्डली, सत्संग सभा बालतिलकमण्डली हिन्दू रेलवे के सेवक मण्डली, गरीबाबाद निवासी सभा वि० सं० १६८४ भाद्रो शुक्ल ७ शनिवार।

(८) श्रीमान् मिथिलाधिपति आनरेबुल जी० सी० आई० ई० के० वी० ई० प्रधान सभापति श्री भारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय काशी २ कृष्ण पौष मासे १९८० वि० कवीन्द्रनारायण सिंह जी प्रधानाध्यक्ष ने श्री साधुबेलातीर्थ में दिया।

(६) श्री हरिवल्लभ हिन्दी पुस्तकालय की प्रबन्ध कारिणी कमेटी की आज्ञा से बम्बई में छबीलदास रामदास सामन्त मन्त्री वि० सं० १६७५ वैशाख शुक्ल ४ मङ्गलवार।

(१०) सनातनधर्म युवक सभा लाड़काणा ने ता० १० नवम्बर सन् १९३३ में दिया।

(११) हिन्दू सनातनधर्म युवक सभा लाड़काणाने ता० १० नवम्बर सन् १६३३ में दिया।

(१२) हिन्दू सनातनधर्म युवक सभा ठारूशाह जिला नवाब शाह सिन्ध ने ता० १६ नवम्बर सन् १६३३ में दिया।

(१३) हिन्दू पंचायत बदीन जिला हैदराबाद सिन्ध ने पौष वदी ११ शनिवार वि० सं० १६६५ को दिया।

(१४) फाल्गुन वदी १२ श्रीचन्द्र सं० ४४७ को गुरु श्रीचन्द्र विद्यापीठ श्री गोविन्दानंद धर्म महामंडल काशी की तरफ से मानपत्र मिला।

(१५) फाल्गुन वदी १५ वि० सं० १६९८ को उदासीन संस्कृत विद्यालय काशी ने मानपत्र दिया।

(१६) फाल्गुन सुदी १ वि० सं० १६६८ को उदासीन श्रीगुरु-संगत संस्कृत महाविद्यालय की तरफ से मानपत्र मिला।



(१७) फाल्गुन सुदी ५ वि० सं० १६९८ को श्री स्वामी